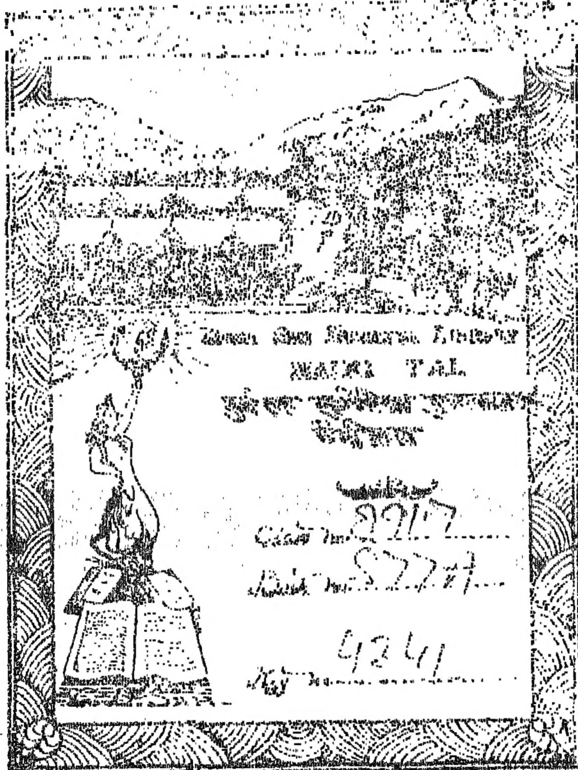

Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No.
Book No.
Received On



(हास्यरस से ओत-प्रोत मनोरंजक कहानियाँ)

लेखक—

श्री सरयूपण्डा गौड़

प्रकाशक



★

प्रथम संस्करण

अगस्त १९५६

मूल्य—दो रुपया चार आना

★

मुद्रक

राष्ट्रभाषा मुद्रणालय

लहरतारा

बनारस—४

समर्पयामि

उन्हें—?

जिन्हें मातमी सूरत से नफरत है, जो मुहर्रमी मुँह देखते ही कोसों दूर भागते हैं।

जिन्हें हास्य से प्रेम, हँसना-हँसाना जिनका नेम, और हास्य ही कुशल-क्षेम है।

जो रोना नहीं, हँसना जानते हैं।

जो रोकर नहीं, हँसकर दिन बिताते हैं।

जो जिन्दगी की जलन, संसार का हलाहल, हँसते-हँसते पी जाते हैं, तनिक "उफ्—!" तक नहीं करते।

जो मस्त-मौला हैं। जो दुनियाँ से गाफिल फक्कड़ी-जीवन व्यतीत करते तथा संसार की सारी यंत्रणाओं को अंगूठे दिखाते अट्टहास किया करते हैं।

यह "आदाब अर्ज़—!"

उन्हीं की पाक खिदमते-आलिया में—!

विनयावनतः—

—पुस्तक प्रणेता।



भाई साहब, क्या बताऊं ! इस 'आदाबअर्ज' से दुनिया खुश होती है । अफसरान खुश होते हैं । 'आदाबअर्ज' सभ्यता का द्योतक, नम्रता एवं शिष्टता का उज्ज्वल प्रतीक माना जाता है । यदि कोई आदमी अपने से बड़े या आदरणीय व्यक्ति को देखकर नम्रतापूर्वक शीश झुकाकर, दाहिने हाथ की सब उंगलियाँ सटाकर, और उसे ललाट से छुलाकर, विनीत एवं मृदु वाणी में आदाबअर्ज नहीं करे, तो वह आदमी महामूर्ख, घोर असभ्य तथा अत्यन्त अशिष्ट समझा जाता है । 'आदाबअर्ज' से लाखों बिगड़ा काम बन जाता है । ऐसी है 'आदाबअर्ज' की महिमा !

मगर यह हैं हमारे पड़ोसी मौलवी मकसूदा साहेब आलिम-फाजिल, जो 'आदाबअर्ज' की एक भनक मात्र सुनते ही यों भौंक उठते हैं, जैसे—बौराया कुत्ता ! राम जाने इस पढ़े-लिखे, आलिम फाजिल

मौलवी को 'आदाबअर्ज'—जैसे नेक और शरीफ शब्द से ऐसी सख्त चिढ़ क्यों है कि ज्यों हीं किसी ने कहा—'आदाबअर्ज !' कि उस बद-नसीब की शामत आई। मौलाना फौरन लाठी, डंडा, कलछुल, हँसिया, लोढ़ा, पीढ़ा, ईंट, पत्थर, गोया उस बेचैनी एवं बौखलाहट में जो भी हाथ लगेगा, चला देंगे। अब उस 'आदाबअर्ज' कहनेवाले का भाग्य! मौलाना के इन विकट-विकराल शस्त्रास्त्रों से बचे या उसका सिर, सीना, पीठ, पैर, नाक, आँख टूटे या फूटे! अथवा वह कम्बख्ती का मारा मर ही क्यों न जाय! इससे मौलाना को मुतलक मतलब नहीं!

और वाह रे, मेरे मुहल्ले के बहादुर! रोज ही मौलाना के मुख से अपनी माँ-बहनों की सौ-सौ गंडे गन्दी गालियाँ सुनकर, मौलाना के शस्त्रास्त्रों से अपनी पीठ तथा कपार तुड़वा फुड़वा कर भी, 'आदाबअर्ज' कहने से एक दिन तो क्या, एक क्षण भी नहीं चूकते! राम जानें, इन्हें 'आदाबअर्ज' कहने और बदले में मार खाने, गालियाँ सुनने में ऐसी कौन-सी लज्जत, कौन-सा लुत्फ मिलता है।

और इस 'आदाबअर्ज' ने मेरी बड़ी मुसीबत [illegible] जान के लिए पैदा कर दी। आखिर [illegible] के पड़ोस में रहता [illegible] [illegible] जब [illegible] गालियाँ और [illegible] की [illegible] तब [illegible] क्या छूटती! नाचीज़ भी, फिर कोई [illegible] भी [illegible] पेशा एक लेखक हूँ! कभी सिर की कलम से ठोक-ठोककर कोई प्लाट ढूँढ़ पाता हूँ और उसे कलमबन्द करने के लिए ज्यों [illegible] हूँ कि 'आदाबअर्ज' और गालियों का [illegible] आता है। भागो, गाली और 'आदाबअर्ज' में एक होड़-सी लगी हो। फिर [illegible] की [illegible]—फिर 'आदाबअर्ज' कहनेवाले व्यक्ति की भाग दौड़! फिर खटपट, पटपट, धम-धम उनके पैरों की धमक, आवाज़! और मेरा भी बरामदे या चौतरे से शीघ्र पलायन, इस भय से कि कहीं

इस 'धरम-धक्के' में 'जौ के साथ घुन' भी न पिस जाय! यानी मेरे मस्तक का भी कचूमर न निकल जाय! सोचा हुआ प्लाट, जगी हुई भावना, और 'मूड' से भरी तबीयत, सिर्फ़ ढेले के एक 'धब्ब' से काफ़ूर! खीझ उठता, किस कम्बख्त के पड़ोस में मैं बसा, या कैसा कम्बख्त मेरे पड़ोस में!

आप घबरायेंगे, एक पढ़े-लिखे [illegible] आदमी को 'आदाबअर्ज़' से ऐसी सख्त चिढ़ क्यों?

इसकी कहानी काफ़ी मज़ेदार होने के साथ ही बड़ा दुःखान्त भी है। सुनिए—

मौलाना मकरुल्लाह साहिब [illegible], मेरे मुहल्ले के हिन्दू-मुसलमान—दोनों के लिए [illegible] थे। एक तो वृद्ध आप ही अपने वय के [illegible] होते हैं, दूसरे मौलाना बहुत नेक, [illegible]। बड़े धर्मात्मा, पाँचों नमाज़ के पाबन्द, मस्जिद के पेश-इमाम और [illegible] विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। उम्र पचास को [illegible]। दाढ़ी के एक-एक बाल सुफ़ेद। सादा खाना। सादी पोशाक। सादा रहन-सहन। और सदा तस्बीह फेरते रहना—मौलाना की दिनचर्या थी।

[illegible] मौलाना के पुराने मित्र, जो [illegible] साथ एक कयामत लेते आते। [illegible] नहीं लाता, लाता है तूफ़ान-ए-आला! और मौलाना साहिब, [illegible] नहीं थे। [illegible], जिसकी [illegible]-शौकत, जलाल और जमाल का बयान बड़े पुरज़ोर लफ़्ज़ों में शायरों ने अपनी शायरी में किया है! इस कयामत के आगे खुदाई कयामत को भी, अदना मामूली और एकदम नाचीज़ बनाया है।

शायद, आप घबरायेंगे कि वह कौन-सी कयामत है, जो खुदाई कयामत से भी ज्यादा ताकतवर और बड़ी है !

आप सुन लें—वह कयामत है, यह वह कयामत है, वह महाप्रलय है, कि इसमें सुर से लेकर असुर तक, बड़े-बड़े योगी-यति से लेकर लंठ-लम्पट तक—सब एक साथ, एक-सा डूबे ! इस कयामत में मूर्ख, विद्वान्, सदाचारी, दुराचारी का विचार या विभेद न रहा—'बरा न काहू थोर !'

औरत की एक तनिक-सी मुस्कान ने बड़ी-बड़ी सल्तनतों को और जान के दोस्तों की दोस्ती को पल मारते मटियामेट कर दिया है। एक से दूसरे को बिलग कर दिया है। रूप और शोभा की ठंडी आग ने स्वर्णपुरी लंका को भस्मसात् कर दिया। सौंदर्य की मधुर शीतल शिखा ने, कौरव-पांडवों के साथ ही सारे भारत को गारत कर दिया ! कहिए, अब कयामत होती कैसी है ? क्या औरत से भी अधिक अलौकिक नाशक और संहारक !

इतनी बड़ी कयामत पड़ोस में हो, और [illegible] — गैर मुमकिन ! जब अपना एक अभिन्न मित्र उस कयामत की [illegible] रहा हो, जिसका जल्वा देख रहा हो, तब तो और हसरत होती है—काश, [illegible] !

और इस कयामत में कमाल यह था कि वह ठेठ देहात की न होकर, शहर कलकत्ते की थी, जिस शहर का नाम खुदा और शैतान से भी ज्यादा मशहूर है। जिसे सारे संसार के आबाल-वृद्ध-वनिता—सब जानते हैं। ऐसे परम प्रसिद्ध महानगर की कयामत का क्या पूछना—? सोने में सुगन्ध !

लकड़ी-सी—पतली दुबली—बेहद नाजुक—चेहरा आफताब—बड़ी-बड़ी आँखें—कमानदार भौंहें—गोरी, यूँ कहिए कि खूबसूरती में चार चाँद लगा दिये थे, खुदा ने।

यह कलकतिया कयामत जब चिलमन की ओट से बेहद हसरत-जदा रंगीन और संगीन चोट करती, तब मौलाना का ईमान पनाह माँगने लगता। हाथ से तस्बीह छूट जाती और मौलाना एक ठंढी आह खींचकर कहते—सुबहान तेरी कुदरत! क्या कयामत है!

दो हफ्ते बिताकर मौलवी सईद कलकत्ता चले गए और इस कयामत को यहीं छोड़ गए, शायद इस खौफ से कि यह बमुश्किल हासिल कयामत, कलकत्ता लौटकर अपना जल्वा दिखाने कहीं और ठौर न फुर्र हो जाय!

जिस शाम मौलवी सईद साहेब कलकत्ता पधारे, उसके सुबह मेरे मुहल्ले के निवासियों ने बड़े विस्मय-विस्फारित नयनों से देखा, मौलाना सिर्फ रात भर में जवान हो गए हैं, उनकी दाढ़ी और सिर के सभी बाल सुफेद से भौंरे की तरह काले तथा रेशम की मानिंद आबदार हो गए हैं। सूखी आँखों में रस का महासमुद्र उमड़ आया है। सुरमे की एक मजेदार लकीर खिच गई है। सादे वस्त्र रङ्गीन और चमकदार हो गए हैं। होठों से गिलौरियों का रस चूने लगा है। आवाज में मिजाज और मजा आ गया है। संसार से विरक्त तथा तटस्थ मौलाना, संसार का लुत्फ उठाने के लिए दीवाना-सा हो गए। कुरआन मजीद की पाक आयतों के उच्चारण के बदले, शायरों की आशिकाना गजलें गुनगुनाने लगे।

और बासी कढ़ी का यह उफान, सूखी गड़हिया की यह गड़गड़ाहट देखकर मुहल्लेवाले दंग-से रह गए! मौलाना के रंग-ढंग से सभी सजग हो गए कि मौलाना कहीं जरूर गहरा गोता लगाना चाहते हैं। मुहल्लेवाले इसी दिन से मौलाना से छेड़खानी करने लगे। उनका आदर-सम्मान प्रायः विलुप्त-सा होने लगा।

सच है, मनुष्य जब अपनी अवस्था, परिस्थिति तथा सम्मान के

विपरीत आचरण करने लगता है, तब वह उपहासास्पद हो ही जाता है। लोग उसपर आवाजकशी करने ही लगते हैं।

खुदा का शुक्र! अल्लाह की देन! मौलाना की एकान्त लगन की जलती तपस्या! अहोरात्र का नेत्रोन्मिलन निष्फल नहीं गया। कलकत्ते की कयामत ने सईद के घर से मौलाना के घर को रौशन-अफरोज किया। बाजाप्ता निकाह हुआ। 'मीलाद' हुआ। सिरनी बाँटी गई। और वही खुदा का शुक्र! मौलाना का वीरान आशियाना आबाद हुआ। मौलाना को लगा—आह! यह संसार कितना मीठा, सुहावना पुरलुत्फ और मजेदार है।

बुड्ढी रगों में जवानी की रवानी दौड़ गई। थौंसा हुआ बुड्ढा बैल, औरत के अधर का अमृत पीकर कुलाचें भरने लगा। और लोग इस पुरानी डेकची पर नई कलई को देखकर कहकहा लगाने लगे।

कहते हैं, 'नीर, नारि नीचे को धावें'—पानी और औरत जब कहीं से छूटेगी, उसकी गति अधोगामिनी होगी, यानी वह नीचे जायगी। नीर जिस प्रकार बिना बाँधे एक जगह नहीं रहता, नारी उसी तरह बिना बाँधे एक जगह नहीं रह सकती। चाहे वह बन्धन चहारदीवारी का हो, पुरुष का हो, इश्क का हो, धर्म का हो, समाज का हो या नैतिकता का हो! वह कलकतिया कयामत खुली हुई यानी अबाध्य कामिनी थी। कहीं से उड़कर ही वह कलकत्ते आई थी, जिसे हाजी सईद कलकत्ता से उड़ाकर अपने घर लिवा ले आए थे। फिर सईद के घर से उड़कर वह मौलाना के घर आई, और एक दिन मौलाना के घर से भी उड़कर, जाने कहाँ पार हो गई।

अहले-सुबह मौलाना उठे तो देखा, बेगम की खाट सूनी है। सोचा, पाखाने गई होगी। जब बहुत देर हो गई, तो मौलाना ने पाखाने में झाँका। देखा, बेगम वहाँ भी नहीं है, तो बेचारे के पैरों तले से धरती भागने लगी। सारा घर छान देने के बाद, बदहवास-से

वह बाहर निकले। दौड़े स्टेशन की ओर। वहाँ भी कुछ पता न चला। तब लगे ईख और अरहर के खेतों में ढूँढ़ने और 'प्यारी बेगम! जानेजाँ बेगम!' कहकर पुकारने-चिल्लाने, परन्तु बेगम वहाँ भी न मिलीं! वहाँ से भागते हुए मुहल्ले में आए, हर घर में पूछा 'यहाँ बेगम तो नहीं आईं?' पर बेगम हों, तब न पता चले!

मौलाना जेठ के कुत्ते की तरह हफर-हफर हाँफ रहे थे। माघ के निठुर जाड़े में भी उनकी पेशानी से पसीना चू रहा था। चेहरा पागल जैसा हो गया था। बेचारे चिल्लाकर नहीं रो सकते थे, न कहीं दाद-फरियाद ही कर सकते थे। कहा है—'अपनी हार और जोरू की मार' कही नहीं जाती। खुद हारे भी थे और जोरू भी दगा देकर भाग गई थी। मार दुहरी लगी थी।

बिजली की तरह मुहल्ले में यह खबर फैल गई, मौलाना की कया- [illegible] बेगम, वाकई मौलाना पर कयामत ढहा गई।

मौलाना हारे हुए जुआरी, आँख गंवाकर लौटे हुए व्यापारी की भाँति अपने घर चले, उनके पीछे लोगों की भीड़ चली। देखा गया, मौलाना की जीवन भर की कमाई भी कलकतिया बेगम साथ लेती गई। घर में एक कानी कौड़ी तक उसने नहीं छोड़ी। साथ ही जख्म पर नमक छोड़ती गयी। हर बक्से पर, आलमारी पर, चौखट पर, किवाड़ पर, दीवार पर—हर जगह खली से, बड़े-बड़े हरूफों में लिख गई—'आदाबअर्ज़!'

बुरे हाथों में पड़कर बेचारे 'आदाबअर्ज़' की भी फजीहत हो गई!

बस, यही इस 'आदाबअर्ज़' की कहानी है जिसे सुनकर ही मौलाना का मातम किया जाता है। पर लोग हैं, जो 'आदाबअर्ज़!' कहने से मानते ही नहीं।



बाबू कालीपद भट्टाचार्य ने जब एक अखबार में यह "आवश्यकता" पढ़ी कि "लखनऊ कालेज में एक ऐसे योग्य एम० ए० पास अध्यापक की आवश्यकता है, जो अँगरेजी और फारसी दोनों का विद्वान हो। प्रार्थना-पत्र भेजने का कष्ट कृपया वही सज्जन उठावें, जिनमें उपरोक्त योग्यता हो—!" तो उछल पड़े।

काली बाबू बेचारे आठ नौ मास से एम० ए० पास करके बैठे झख मार रहे थे। दिन रात नौकरी की चिन्ता में पर कटे पंछी की तरह तड़प रहे थे। परन्तु नौकरी के इस महा-अकाल के युग में, नौकरी

संगदिल माशूक से भी अधिक कठोरहृदया हो रही थी। बेचारे बंगाली बाबू हजारों के चौखटे पर नकदरिया कर चुके थे। लाखों के सम्मुख हाथ जोड़ चुके थे और अगणित लोगों से बिनती कर चुके थे। किन्तु सब व्यर्थ—! सब निष्फल—!

दिनरात नौकरी की तमन्ना, हर वक्त नौकरी की टोह में गली-गली की धूल फाँकते-फाँकते बेचारे का कोमल कलेजा, छनौटे की तरह छेद-छेद और कजरौटे की तरह काला हो गया था। आज एकाएक भाग्य जगा, तो बेचारे बेसुध हो गये। और ऐसे बेसुध हो गये कि उन्हें यह सोचने की सुध न रही कि आखिर यह जो अँगरेजी के साथ फारसी की योग्यता भी रखने की शर्त है, वह तो मेरे लिये हिमालय की चढ़ाई के ही तुल्य है—। मैं तो "अलिफ्" तक से वैसा ही वञ्चित हूँ, जैसे गधे सींग से।

परन्तु अपनी गरज का बावला, अपने गिर्द-गिर्द क्या है, इसे नहीं देखता। वह अपनी धुन की दीवानगी की बेहोशी में, आँखें मूँदे अपनी गरज की ओर दौड़ पड़ता है। चाहे वह गिरे, फिसले या मरे—। काली बाबू की भी ठीक यही दशा हुई। वे एम० ए० पास थे, झट् समझ लिया कि नौकरी मिल के ही रहेगी। मगर इस नौकरी की प्राप्ति के लिये फारसी जानना भी बहुत जरूरी है, इसे सोचने-समझने के लिये न तो काली बाबू को फुर्सत थी, न होश, न ताब—। सोचा, चलो इन्टरव्यू दे ही दें।

काली बाबू झट् अन्दर गये और अपनी पत्नी सुमुखी से बोले—आज रात की गाड़ी से मैं लखनऊ जा रहा हूँ। वहाँ कालेज में एक प्रोफेसर की जगह खाली है। भगवान ने चाहा तो इस बार भाग्य जगेगा। २५०) रु० की जगह है! सुनो, तब तक तुम एक काम करना। जरा काली घाट चली जाना और माँ काली के लिये एक बकरे की बलि की मानता मान देना।

पति देवता की परम प्रसन्नाकृति देखकर, पत्नी भी पति के हर्ष पर अपना हर्ष उड़ेलती हुई बोलीं—भगवान मङ्गल करें। तुम्हें नौकरी मिल जाय। और मैं कल क्या, आज ही जाती हूँ कालीघाट, माँ काली के निकट मानता मान आने।

पत्नी की इस जल्दबाजी पर काली बाबू अधीरता पूर्वक बोले—मगर देखो, यह बात बाँय-बाँय करते सारे मुहल्ले में फेंक मत आना, समझी—? नहीं तो यहाँ हजारों एम० ए० क्या, डबल एम० ए० दिन भर बैठे बैठे मक्खियाँ उड़ाया करते हैं, जहाँ भी उनके कान में तनिक-सी भनक भी पड़ी कि वे रस्सा-तुड़ाये बैल की तरह, दौड़ पड़ेंगे [illegible] का द्वार----!

सुमुखी देवी दाँतों तले जीभ दाबती हुई बोलीं—राम—राम—!! मुझे भी तुम क्या ऐसी-वैसी छिछोरिन औरतों में समझते हो—? क्या मजाल जो मेरे मुँह से इस बात की तनक गंध तक निकले।

उसी दिन रात को काली बाबू रातगाड़ी से प्रातः लखनऊ पहुँचे। परन्तु जब वे कालेज के निर्धारित स्थान में पहुँचे तो उनका होश फैतरा करने लगा।—अरे बाबा, यहाँ तो मुझसे भी पहले से हजारों हैट-पतलूनधारी आकर डटे हुए उम्मीदवार खड़े हैं! कोई टाई ठीक कर रहा है। कोई पतलून सँभाल रहा है। कोई कालर में उँगली डाल-कर कालर सीधा कर रहा है। एक टुकड़ा, हजारों भुक्खड़—! काली बाबू को, आशाओं पर पाला पड़ता मालूम हुआ! परन्तु जब वे कल-कत्ते से चल कर यहाँ आ गये थे तो एक बार अपने भाग्य को आजमा ही लेना उन्होंने उचित समझा।

कालेज भवन के एक कमरे में, एक वयोवृद्ध सज्जन, जो भाषाओं के एक गहरे जानकार थे—इन प्रार्थियों के "इन्टरव्यू" ले रहे थे। चार उम्मीदवारों की भाग्य-परीक्षा के बाद, उनके भी भाग्य की परीक्षा का अवसर आया। चपरासी काली बाबू को लिये उस कमरे में पहुँचा,

जहाँ 'इन्टरव्यू' लेने वाले सज्जन एक सुन्दर कुर्सी पर विराजमान थे। घनी दाढ़ियों के अन्तराल में उनकी रोबीली सूरत, प्रशस्त ललाट के नीचे दो बड़ी-बड़ी तेजपुञ्ज आँखें, माँद से झाँकते हुए शेर की तरह त्रासदायक मालूम हो रही थीं। जिसे देखकर बेचारे कोमल-हृदय काली बाबू, धुनकी के तांत की तरह काँप उठे। उनका कलेजा घड़ी के पेन्डुलम की भाँति हिलने लगा।

काली बाबू को अपनी तेज निगाहों से आपाद-मस्तक घूरते तथा उनका नमस्कार स्वीकार करते वह वृद्ध सज्जन बोले—कहिये, कहाँ से तशरीफ लाये हैं आप?

काली बाबू ने "तशरीफ" का अर्थ "तस्वीर" समझा, क्योंकि बेचारे खाँटी बंगाली थे। उन्हें क्या मालूम कि यह "तशरीफ" क्या बला है—? समझा उन्होंने, कदाचित "इन्टर व्यू" में तस्वीर की आवश्यकता थी। बेचारे अपनी इस भूल पर कुछ घबराये-से बंगला-मिश्रित टूटी-फूटी हिन्दी में बोले—"सर, हाम अपने साथ कोई "तोशोवीर" टा तो नेई आनने शका! घोर जाने पर पठाने शक्ता हाय।

वृद्ध महोदय अपनी हँसी को अपने बुढ़ापे की गम्भीरता से ढँकते हुए बोले—आपका वतन—?

काली बाबू ने समझा, यह हमारी हृष्ट-पुष्ट देह देखकर शायद मेरा वजन पूछ रहे हैं। काली बाबू सुगठित शरीर थे ही, अतः बड़े अभिमान से बोले—जी, सर. हामरा वोजन एक मन, बीश शेर—!!

काली बाबू का "इन्टर व्यू" लेने में, उन सज्जन को शायद बहुत मजा आ रहा था, अतः उन्होंने फिर पूछा—आपका जरिया-माश—!

काली बाबू ने समझा, यह बूढ़ा पूछ रहा है कि क्या मांस खाकर तुम इतने तगड़े व वजनदार हुये हो—! काली बाबू तपाक से बोले—"नेई, सर, हम मांशो तो नई खाता, खाली अण्डा-फण्डा खाता हाय—!

उन बूढ़े सज्जन ने फिर पूछा—आपका इस्म शरीफ—?

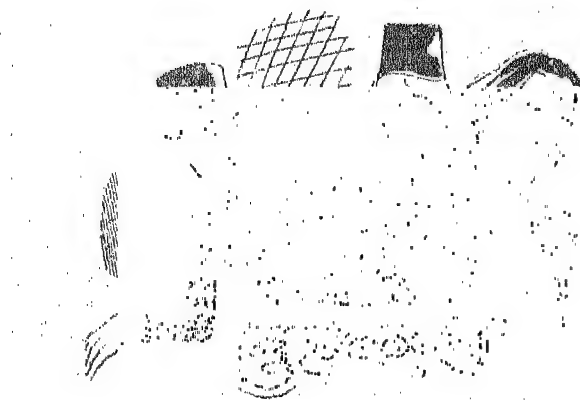
काली बाबू बोले—नेई, हम "शेरीफ" (शहरों का चीफ अफसर—फौजदार) नई हाय, और ना कभी इस काम का वास्ते दॉरोखास्तो-फॉरोखास्तो किया ।

वे सज्जन मुस्कराते हुए बोले—खैर, अब हम सब समझ गये । कष्ट के लिये क्षमा कीजिएगा । हम आपसे मिलकर बहुत खुश हुए । इस समय तो आप अपने घर पधारिए । फिर जैसा होगा आपको सूचित किया जाएगा । नमस्कार—!

काली बाबू अपने घर, कलकत्ते लौट आए । अब वहाँ से केवल सूचना आने भर की देर है । यह बिलकुल कसे-कसाये तैयार बैठे हैं । इसी बीच काली बाबू ने यह बुद्धिमानी की, कि अपनी एक सुन्दर तस्वीर उतरवा कर लखनऊ कालेज के प्रिन्सपल के पास पठना दिया । दो-चार किस्म के नये-नये "गुरु" सिखला लिये । बस, अब खबर आवे, तब खबर आवे । रोज इसीका इन्तजार है ।

मगर कम्बख्त खबर आये भी तो—?

—+—



जी ! जिस तरह चिता और चिंता में, केवल बिंदुमात्र का अन्तर है उसी तरह मुहब्बत और मूर्खता में, मात्र ह्रस्व-दीर्घ का अन्तर है । अगर मूर्खता को मुहब्बत का, या मुहब्बत को मूर्खता का पर्याय मान लिया जाय तो हमें कोई एतराज नहीं ! बल्कि हम तो कुछ और अग्रगामी होना चाहते हैं ! भगवान ऐसा करे, यदि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की सुबुद्धि दे और वह संक्षिप्त या बृहत् 'हिन्दी शब्द-सागर' का पुनः परिवर्धन या संशोधन कराना चाहे, और भगवान की कृपा से उसके सम्पादकों में मेरा भी नाम रहे तो मैं निःसंकोच और बेधड़क मुहब्बत मानी प्रेम के बदले मूर्खता, या मूर्खता मानी बेवकूफी के बजाए मुहब्बत लिख दूं !

जी ! ऐसा मेरा ख्याल ही नहीं, बल्कि मेरा व्यक्तिगत अनुभव भी

है। जो नाता हसीन और नाज से, नेता और स्वराज से, तबायफ और इसराज से, गायक और आवाज से है, वही नाता मुहब्बत और मूर्खता से है, क्योंकि मुहब्बत की दुनिया में बुद्धिमत्ता का नाम मूर्खता और मूर्खता का नाम बुद्धिमत्ता है।

"फर्जानगी कुसूर है दुनियाये इश्क में।
दीवाना जो हुआ वही कामिल ठहर गया॥"

ऊपर की सारी बातों के कथन का एकमात्र कारण यह है कि मैं जो कहने जा रहा हूँ, उसे सुनकर आप मुझे दीवाना न मान लें, बल्कि मुहब्बत की दुनिया का एक गहरा जानकार तथा महान विद्वान समझें।

गाड़ी मुगलसराय से खुली। भीड़ खूब थी। ग्रहण लगा था और धर्मात्मा लोगों की खूब धक्कम-धुक्की थी। देवियों की गोदों में चीखते हुए बच्चे! देवियों के पति-देवताओं के सरों पर बक्से, पीठों पर गठरें, हाथों में गङ्गा माता का पवित्र जल! इनके पीछे डंडों के बल, काँपती-थर्राती, इनकी माँ या दादी या सासुजी! मुँह में दाँत नहीं। पैरों में ताकत नहीं। कंठ में बोल नहीं। धर्मात्माओं की यह सारी जमात प्लेटफार्म पर यों चीखती-चिल्लाती दौड़ रही थी, मानों इनके घरों में आग लगी हो, और ये अपने सारे सामान, सारे परिवार के साथ बेतहाशा, कहीं पनाह पाने को, भागे आ रहे हों। और इस भगदड़ में किसी का लोटा हाथों से छूटकर 'ठन-ठन' करता प्लेटफार्म पर से नीचे लाइन पर लुढ़क जाता, किसी की सुराही गिरकर गङ्गाजली का जल होता, किसी धर्मात्मा के डंडे की चोट खा कर कुल्हड़ी में बैठ जाती; किसी धर्मात्मा का बक्स, इस रेलपेल की धक्कामुक्की में गिर कर किसी धर्मात्मा का सर, किसी का कंधा, और किसी का पैर तोड़ता, फोड़ता और पीसता जमीन पर आ रहता। फिर धर्मात्मा लोगों में शुद्ध गाली-गलौज ही नहीं, मारपीट तक हो जाती।

इस फर्स्टक्लास में बा-आराम और सानन्द बैठनेवाले लोग, इस दृश्य के मजे ले लेकर खूब हँसते, फब्तियाँ कसते और खुलकर ठहाके लगाते। इन बेचारों की परेशानियाँ हमारे मनोरञ्जन का मसाला हो रही थीं।

इसी समय, कुछ घबराई-सी, चौंकी-सी, हाँफती हुई एक देवीजी अपने हाथों में चमड़े का एक खूबसूरत छोटा-सा सूटकेस लिये, हमारे डब्बे में दाखिल हुईं और धब्ब से मेरी बगल में आ बैठीं। खुदा का शुक्र ! जो उस डब्बे में हमसे भी ज्यादा हसीन और रङ्गीन लोग अपनी तशरीफ-मुबारक से डब्बे को रौनक व रोशन-अफजाई फरमा रहे थे। मगर इन देवीजी की कृपा हुई, मेरी ही ओर !

[illegible], [illegible] सूरत थी, भोली-भाली। और मेल-मुलाकात, [illegible] निकट आ बैठे, [illegible] क्या [illegible] ! [illegible] ! [illegible] ! और, [illegible] !

लगा, जैसे किसी ने मखमली दाँतों से दबोच लिया, जो [illegible] नहीं हुआ, मगर बेचैन जरूर हो गया। दर्द तीखा नहीं, मीठा हुआ, और जाने क्यों मेरी नाक कान से लू की लपट-सी कोई चीज निकलने लगी। सारा शरीर [illegible] आग तापे, गर्म हो गया और जबान तालू में चिपक गई।

मेरी अजीब हालत थी। [illegible] सकता नहीं और [illegible] बिना रहा जाता नहीं। [illegible] साड़ी के [illegible] आवरण को भेदन करती उन देवीजी के [illegible] की कोमलता तथा कमनीयता, [illegible] भी पानी-पानी कर देने की [illegible] से परिपूर्ण थी। अब

को भी विचूर्ण करने के महाबल से सम्पन्न थीं। तब मुझ जैसे हाड़-मांसवाले की हस्ती ही क्या थी!

बड़ी-बड़ी कजरारी शोख व शर्मीली आँखें! गांडीव को लज्जित करने वाली भौंहें! पान से भी पतले होंठ और बिजली पर भी बिजली गिरानेवाली मीठी मुस्कान! पीठ पर मस्त नागिन की तरह लोटती हुई लट! किसी बदकिस्मत को लूटने के लिए कौन-सी चीज़ उनके पास मौजूद न थी!

खिड़की के बाहर मुँह निकाले, हवा के थपेड़े पर थपेड़े खाते रहने पर भी मेरे माथे का पसीना सूख नहीं रहा था। मैं अपनी परेशानियों को दबाने व छिपाने की लाख कोशिशें कर रहा था, मगर मेरी सारी कोशिशें नामुराद आशिक की भाँति बेकार हो रही थीं। तब मैं एक उपन्यास लेकर बैठ गया, मगर मालूम हुआ, मैं अब तुरन्त गश खाकर गिर जाऊँगा। फौरन किताब बन्द कर दी। मन बहलाने के निमित्त अपनी जगह से उठकर दरवाजे के पास आया, कुछ लोग पहले से ही वहाँ डटे खड़े थे। मुझसे वहाँ भी खड़ा नहीं रहा गया। फिर, तुरन्त ही अपनी जगह पर लौटा कि डब्बे के किसी तजुर्बेकार ने एक बड़ा सधा तीर मारा—क्यों साहब! आपके मिजाज तो अच्छे हैं न! तीर खाते ही मैं तुरत सँभल गया और दार्शनिकों-सा गम्भीर हो बोला—जी, क्या बात है जो आपने मेरा मिजाज पूछा। आपके देखने में मेरा मिजाज कैसा है? उन्होंने कहा—यों देखने में तो आपका मिजाज कोई वैसा नहीं मालूम होता। हाँ, थोड़ी बेचैनी तो ज़रूर [illegible] है। क्यों, घर पर तो कुशल-मंगल है न! यह तीर पहले तीर से भी चोखा था। मैं तिलमिला उठा और बोला—माफ़ कीजिएगा, मैं शायद भूल गया हूँ, आपसे अपनी नातेदारी। मैं समझता हूँ, आपसे मेरी कोई मीठी ही नातेदारी होगी, तभी आप मेरे घर के लिए बेचैन हो रहे हैं। वे सज्जन तनिक मुस्कराकर बोले—जी, माफ़ कीजिए—आप

शायद नाराज हो गए ! मैं अपने शब्दों को फुलस्टाप व कॉमा के साथ वापस लेता हूँ ।

फिर डब्बे में चार-पाँच कंठों की मधुर हास्य-ध्वनि सुनकर सचमुच मैं और घबरा गया । कनखियों से उन देवीजी की ओर देखा, आखिर इन भलेमानसों की इन चुहलियों व छेड़खानियों का असर इनपर क्या हो रहा है ? ये मुझे कोई छुआ-भागड़ा तो नहीं समझ रही हैं ! न जाने क्यों, इन देवीजी पर मेरा कोई बुरा असर न पड़े, मेरे सम्बन्ध में इनकी कोई बुरी धारणा न हो, इसके लिए मैं बहुत डरा और घबरा गया !

परन्तु भगवान की दया—देखा, देवीजी चुप बिल्कुल निश्चिन्त बैठी हैं; मानो, उन्होंने मेरी बकवाद सुनी ही नहीं या सुनी भी हो, तो उसपर तिलमात्र भी ध्यान दिया ही नहीं । मैंने प्रभु को असंख्य धन्यवाद देकर सन्तोष की साँस ली ।

गाड़ी भागी जा रही थी । एक स्टेशन के बाद दूसरे स्टेशनों को छोड़ती वह बड़ी तेजी से दौड़ी जा रही थी और मेरी भावना, कल्पना तथा धारणा की गाड़ी, इस गाड़ी से भी तेज रफ्तार में दौड़ी जा रही थी ।

देवीजी मेरे अत्यन्त निकट, कुछ इन्चों की दूरी पर जरा-सी घूमी हुई निश्चल बैठी थीं । उनका रूप मुखमण्डल स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था । कभी-कभी लोगों की नजरें बचाकर जब मैं अपने बेचैन व लालायित लोचनों से उनकी ओर देखता था, तब उनके ताम्बूल-रंजित अधरों पर हल्की मुस्कान खिल उठती थी, मदमाती आँखें मिचने लगती थीं और उनके स्नेहरस का महासमुद्र बड़े वेग से उमड़ पड़ता था, जिसकी लहरों के थपेड़ों से मेरा धैर्य, गाम्भीर्य, बुद्धि और विवेक, सब निराधार हो, उस स्नेह-समुद्र की अथाह जलराशि में ही डूबने लगते, जैसे तिनका । सच मानें तो, मैं अपना आपा खोता जा रहा था और इस तरह अपने आपका संहार करनेवाले उस मधुर मुखमण्डल को निरखता ही जा रहा था । चाहिए तो यह था, जो बीज

मुझे पागल, मूर्ख व गाफिल बना रही है उसे टुक हेरना तो क्या, उससे सर्वथा दूर भागना चाहिए था। मगर मैं क्या बताऊँ। मुझसे वैसा हो नहीं रहा था, जाने, मेरी विद्या-बुद्धि, कहाँ घास चरने चली गई थी।

सहसा गाड़ी रुकी। किसी फेरीवाले ने एक विचित्र स्वर में नारा लगाया—सोन....पापड़ी, सो....ओन !!

यह बिहार का विख्यात ऐतिहासिक स्थान बक्सर था! जैसे हापुड़ का पापड़, काशी की पिठ्ठीदार कचौड़ी और कलकत्ते के बागबाजार का 'रशोगुल्ला' अपनी उत्तमता के लिए मशहूर है, वैसा ही बक्सर की सोन-पापड़ी भी। मैंने एक सेर पापड़ी ली। यात्रियों में किसी ने कुछ लिया, किसी ने कुछ। फिर सीटी हुई। गाड़ी खुली और फिर बे-टिकट के यात्रियों का महाप्रेत, हाथों में टिकट काटने का यन्त्र—'पञ्च' लिये डब्बे में घुसा। कई लोगों के टिकट देखने के बाद वह मेरे पास आया। मैंने भी टिकट दिखलाया। फिर वह बोला—और इन देवीजी का टिकट! क्या ये आपके साथ नहीं हैं?

मैं जाने क्यों एकदम घबरा उठा, और मेरी बोली अजीब हो गई जैसे मैं सपने में बोलता होऊँ—ऊँ-ऊँ ऊँहूक्! ए-हाँ, हाँ, क्या पूछा? देवीजी! मे-मे-मेरे साथ?? हाँ-आँ-आँ-! ऊँहू-ऊँहू, नहीं-नहीं। हाँ।

टी० टी० ई० ने कहा—क्यों साहब, आप नींद में हैं या जगे हैं? आँखें तो खुली हैं फिर आपको ऐसे 'ऊँहू-ऊँहू' और 'हाँ-हाँ' के गाने क्यों आ रहे हैं? मिजाज तो आपके अच्छे हैं न?

डब्बेवाले उक्त सज्जन फिर बोल उठे—टी० टी० ई० साहब! आपके मिजाज के बारे में आपसे मत पूछिए। आप पूछने पर नाराज होते हैं।

टी० टी० ई० बड़े गौर से मुझे देखता हुआ बोला—हाँ साहब,

मिजाज पूछने पर आप नाराज होते हैं ? खैर, मुझे आपके मिजाज से मतलब नहीं, मतलब है टिकट से। कृपा कर यह बतलाइए और गले को भलीभाँति साफ करके बतलाइए, यह देवीजी आपके साथ हैं या अकेली हैं ?

मैं—यह देवीजी !

टी० टी० ई०—हाँ ! यह देवीजी, यही देवीजी। कितनी बार कहूँ तो आप समझेंगे।

मैं—यह देवीजी....ए....एँ....क....काशी से....हाँ, काशी से हमारे साथ हैं !

टी० टी० ई०—ठीक है, इनका टिकट कौन देगा ? आप या ये !

मैं—इनका टिकट ! इनका टिकट तो इनके पास होना चाहिए शायद....!

अब देवीजी से टी० टी० ई० ने पूछा—हाँ, कहाँ है आपका टिकट, दीजिए।

देवीजी बड़ी तत्परता से अपना टिकट ढूँढने लगीं—आँचल के छोर में, जाकेट की जेब में, कमर में, [illegible] बटुए में। फिर उठकर बड़ी व्यग्रता से उन्होंने अपनी साड़ी को झाड़ा। सीट के पीछे झाँका। सीट के ऊपर ताका, शायद टिकट उड़कर ऊपर के 'लगेज बर्थ' पर जा अटका हो। पर दुर्भाग्य, टिकट कहीं भी न मिला। देवीजी ने बड़ी करुणापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा, जिसमें सहायता की याचना थी।

उस दृष्टि की करुणामय निराशा से मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया। मैं तुरन्त बोला—कोई बात नहीं, टिकट खो गया तो आप शान्त होकर बैठें। मैं टिकट का दाम दे देता हूँ। आपको जाना कहाँ है ?

वह बोलीं—पटना सिटी।

टी० टी० ई० गम्भीर होकर बोला—पच्चीस रुपये साढ़े पन्द्रह आने, जुरमाने के साथ !

मैंने तत्क्षण उसके हाथ पर पच्चीस रुपए पन्द्रह आने रख दिए। वह हक्का-बक्का-सा हो रहा, क्योंकि उसे उम्मीद नहीं थी कि मैं इतना साहस कर सकता हूँ। मगर उस कम्बख्त टी० टी० ई० को यह पता न होगा, कि जब इन्सान मुहब्बत में जान तक कुर्बान कर सकता है तब इन बीस-पच्चीस रुपल्लियों की हस्ती ही क्या ! टिकट के साथ ही अपना मुँह भी बनाकर वह टी० टी० ई० मेरे सामने से हट गया।

अब देवी जी खिड़की की ओर अपना मुँह कर, आँखों से सोमरस का सागर उड़ेलतीं, मन्द-मुस्कान से बोलीं—आपकी इस कृपा को कभी न भूलूँगी। ओफ ! हड़बड़ में न तो टिकट कटा सकी, न अपना मनीबेग ही ले सकी।

मैं सोमरस का दीवाना दिल खोलकर बोला—कोई बात नहीं। रुपये मेरे पास काफी हैं, जितनी आवश्यकता हो, कहिए, मैं दे दूँ।

देवी जी अजीब ढङ्ग से अपने पतले होंठों को काटती हुई बोलीं—ना....ना ! आपके एहसान क्या कम हैं, जो मैं एक दूसरा भी लूँ। आपके इसी एक एहसान से तो दबी जा रही हूँ, दूसरा लेने पर तो शायद मर ही जाऊँगी।

इसके बाद वे फिर मुसकराईं और उस मुसकराहट में क्या गजब का जादू था—किसी दिल को दीवाना बना देने की कितनी ताक़त थी, इसे वही समझेगा, जानेगा, जो ऐसी मुसकराहटों की मार खा चुका है। मन्त्र-मुग्ध की भाँति मैंने [illegible] अपना पर्स खोला और सौ-सौ के दो नोट उनकी मुलायम उँगलियों में [illegible] ठूँसता हुआ बोला—इन्हें आप नहीं लेंगी तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

मगर यह मुझ पर भारी कर्ज हो रहा है!—[illegible] मुस्कान से वह बोलीं।

मैं—खैर, जुर्म ही सही, इसे आप रखें।

फिर गाड़ी पटना-स्टेशन पर थी। वह अपना सूटकेस सँभालती हुई उठीं। मैं भी उन्हें दरवाजे तक पहुँचाने के लिये उठा। गाड़ी से उतरकर वह प्लेटफार्म पर खड़ी हो गईं। और फिर वही मारक मुस्कराहट छोड़तीं, आँखों से रस उड़ेलती बोलीं—मुझे भूलियेगा मत। लौटती बार दर्शन अवश्य दीजिएगा। मेरा पता—नाला पार, हीरा देवी।

मैं—बस इतने से आपका पता पा जाऊँगा।

वह—जी। फिर वह अपने दोनों हाथों को उठाकर बड़े प्रेम से प्रणाम कर चली गईं और उनके जाने के बाद मुझे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे बिजली के हजारों लट्टुओं से जगमगाता पटना-जंकशन एकाएक घुप अन्धकारमय हो गया। कोलाहलमय वातावरण सहसा मरघट की मौनता में बदल गया। और मेरा मन पागलों जैसा हो गया।

अब मेरी समझ में आया, यह मुहब्बत भाँग-धतूरे से भी कितना भयानक नशा है। गाड़ी पूरब की ओर भागी जा रही थी और मेरा यह बौड़हा मन पच्छिम यानी पटने की ओर। बहुत जल्द यानी दो ही रोज बाद, मैं पूरब से लौटा। पटना उतरा। दिल में अरमानों की दरिया, दिमाग में तमन्नाओं का उजूम-सा उमड़ रहा था; और छाती गजों चौड़ी हुई जा रही थी। साथ में कलकत्ते के मशहूर मिठाई, एक हाँडी 'रसगुल्ले' थे। दो कीमती खूबसूरत साड़ियाँ थीं। आईना, कंघी, तेल और कुछ दूसरी किस्म की और-और जनानी सौगात थी। रिक्शे पर सवार हो, पटने के 'नाला पार' मुहल्ले में पहुँचा। शाम के चार बज चुके थे। देखा, ठीक उन्हीं रेलवाली देवीजी की शकल का एक बड़ा खूबसूरत सतरह-अठारह साल का छोकरा, कमर में हरे रङ्ग की सिल्क की लुङ्गी बाँधे, बदन में सिल्क की ही गुलाबी गंजी पहने, अपनी बड़ी-बड़ी काकुलों के बीच से माँग काढ़े, कमर पर

हाथ रखे बड़ी दिलकश अदा में खड़ा है। मुझे ताड़ते देर न लगी, अवश्य यह हीरा देवी का भाई या कोई निकट का सम्बन्धी है। उस छोकरे के निकट जाकर मैंने पूछा—"क्यों भाई, हीरा देवी का मकान कौन है, तुम बता सकते हो?"

वह बड़ी मुस्तैदी से बोला—"हाँ, हाँ, आइए, आइए।" हुजूर का कहाँ से आना हुआ?"

मैं थोड़ा परेशान स्वर में बोला—"आना तो भाई कई जगहों से हो रहा है। हाँ, अभी कलकत्ते से आया हूँ। चौथे रोज काशी से चला था। हीरा देवीजी हमारे साथ यहाँ तक आई थीं। उन्होंने मुझे बुलाया था, इसीलिए चला आया। अब...."

वह छोकरा फिर बड़ी तत्परता से, बीच ही में बोल उठा—"बहुत अच्छा किया सरकार, आइए।"

वह छोकरा मुझे एक साधारण से दोमञ्जिले मकान में ले गया। एक लम्बा-सा कमरा था, जिसमें एक मामूली-सा फर्श बिछा था। छोकरा मुझे फर्श पर बिठाकर बड़ी नम्रता से बोला—"हुजूर तशरीफ रखें, मैं अभी हीरा देवी को लेकर आया।"

मैं बैठ गया। एक-एक क्षण की प्रतीक्षा मुझे बुरी तरह सता रही थी। दिल धड़क रहा था। दिमाग [illegible] रहा था। कोई पचीस-तीस मिनट के बाद श्रीमती हीरा देवी कमरे में प्रकट हुईं। मुस्करा कर मुझे प्रणाम किया और अभी मैं कुछ बोलनेवाला ही था कि एक बूढ़ा, अपनी सफेद लम्बी दाढ़ी, [illegible], तबला के साथ, और एक नौजवान हारमोनियम के साथ पहुँचा। हारमोनियम [illegible], ढोलक बजी और फौरन हीरा देवी का 'गाना' शुरू हो गया। फिर नृत्य [illegible]। और [illegible] भाव और मादक [illegible] [illegible] आसमान से [illegible] निकालकर [illegible] पाताल के पेट में! मैं हक्का-बक्का-सा [illegible] इन [illegible] को देख रहा था। अपनी मूर्खता पर मरा जा रहा था। और ये बूढ़े

गला फाड़-फाड़कर गाने व चिल्लाने—कूदने-फाँदने में बेहोश थे। चार गाने के बाद यह चिल्लाहट व कूद-फाँद बन्द हुई और वह बूढ़ा बड़े गर्व से बोला—"हुजूर, हमारी पार्टी को किसी जलसे, तवाजे में याद फरमाइएगा। फिर मजा आ जायगा। सिर्फ यह एक छोकरा सात-सात तवायफों का नाक-कान काट सकता है। क्या नाचना, क्या गाना, क्या नाज-नाज, किसी में कोई तवायफ मुकाबला कर ले, तो उसी दम यह गुलाम अपनी दाढ़ी मुड़ा ले।

छोकरा? हे भगवान! यह हीरा देवी शरीफ औरत है, या शिखण्डी। सोच-सोचकर मैं व्याकुल हो रहा था, अब इसे औरत से एकदम छोकरा, यानी मर्द देखकर, मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि मैं ही नहीं, सारा संसार पागल हो गया है। लगा, शायद अब तुरन्त कयामत होगी। मैं एकाएक पागल-सा अपनी जगह से उठा। हीरा देवी ने मुझे देखकर फिर वही रेलवाली मोहक मुस्कान फेंकी, जो मुझे अपनी मूर्खता पर एक विषाक्त परिहासमात्र प्रतीत हुई और मैं बौखलाकर पल्ले झाड़कर, बेतहाशा भागा। हीरा देवी मुझे जाते देख उसी मुस्कराहट से आदाब-अर्ज करती हुई बोली—"भूलिएगा मत सरकार, मुझे याद रखिएगा जरूर। ज्यादा नहीं तो बरस-दो बरस पर ही सही।" मैं सीढ़ियों से उतरता-उतरता बोला—"बरस-दो बरस! अरे इस जन्म भर न भूलूँगा। जरूर आऊँगा, यह मजा, यह लुत्फ, यह मुहब्बत याद रखूँगा! आप खातिर जमा रखें!"

बेचारा कि



हम किरानी हैं। किरानी और कुली में, एक वाक्य में कहें, तो केवल उतना ही अन्तर है जितना अन्तर पाजामा और जाँघिया में है! यानी हम पिंडली तक और वह घुटनों तक! इसे और स्पष्ट करें तो हम और बदतर हो जायँगे। अगर हम स्पष्ट करेंगे, आपको अपनी मजबूरियों तथा मुसीबतों से परिचित कराने के लिए। वह घुटनों तक वस्त्रधारी कुली, सिर्फ सूरज के उगने से लेकर डूबने तक काम करता है—और हम पैजामावाले लोग, सूरज उगने के पहले और डूबने के बाद भी रात ढले तक फाइलों के महासमुद्र में पनडुब्बी की तरह नाक डुबाए रहते हैं। कुली अपने काम से चूकेगा तो उसकी एक दिन की मजूरी काट ली जायगी अथवा वह वहाँ से हटा दिया जायगा और फिर दूसरी जगह उसे काम आसानी से मिल सकता है। मगर हम?

हम अपने काम से चूकेंगे तो, बाँधे जा सकते हैं, कालापानी हो सकता है, और मुमकिन है, फाँसी भी। और यदि 'डिसमिस' कर दिये गये तो फिर सारे हिन्दुस्तान में, नाक रगड़ कर मर जायँगे, कहीं काम नहीं मिलेगा। इसलिए जँघिया, पाजामा से छोटा, हल्का और ओछा होकर भी लाख दर्जे अच्छा है, और पाजामा बड़ा, गम्भीर और शरीफ पोशाक होकर भी करोड़ गुना बदतर है। मतलब, हम किरानियों से कुली अच्छे, पाजामे से जाँघिया अच्छी। दफ्तर का मलवा जिसे आप सुन्दरता के लिए 'फाइल' कह लें— जब हम दफ्तर में साफ नहीं कर सकते हैं, तब उस अभागे कूड़ेखाने को पीठपर लाद, घर में जूझने के लिए ले आते हैं। शौक से नहीं, आपको मालूम होना चाहिए, काम शौक से नहीं, मजबूरी से किया जाता है। हाँ आराम अलबत्ता शौक से किया जाता है! और अपनी [illegible] के महाप्रलाप को प्रचारित करने के लिये नहीं, [illegible], कुरसी, फाँसी और 'डिसमिसल' के डण्डे से बचने के लिए, दफ्तर के इस महादानवके महाभय से, हम अपनी बेगम के नैन-से-नैन मिलाकर सैन का लुत्फ़ चैन से नहीं ले सकते। [illegible], [illegible] बहार बहार नहीं लूट सकते। बच्चों को दुलार-प्यार कर, आनन्दोपभोग नहीं कर सकते। घर आए, कूड़ा पटका, शौच गये, जलपान किया और फिर उस कूड़े को कलम की कुदाल से कोड़ने और दिमाग के हल से जोतने लगे। कबतक? जबतक कि ऊँघकर, खिजाँ के आलम में उस कूड़े पर नहीं गिर जाते। फिर चार ही बजे सुबह उठकर [illegible] की मानिन्द [illegible] लगे!

एक साधु बाबा के मुँह से किसी दिन मैंने एक गाना सुना था—

मिट्टी ओढ़ना, मिट्टी बिछौना, मिट्टी है सिरहाना।
मिट्टी की ही अंगा-टोपी, मिट्टी में मिल जाना॥

अगर इस मिट्टी की जगह 'फाइल ओढ़ना, फाइल बिछौना,

फाइल ही सिरहाना' रख दें, तो हम किरानियों पर यह ख़ासा फिट बैठे। हाँ, अन्तर केवल इतना रहेगा कि बदकिस्मत फाइलें, हमारे मरने पर हमारे साथ इस मिट्टी की शरीर की भाँति मिट्टी में नहीं मिलेंगी, ये हमारी सन्तान को सताने के लिए शिव की भाँति शाश्वत काल तक चिरञ्जीव रहेंगी। इन फाइलों का हिमालय न सड़ेगा, न गलेगा, न जलेगा। ये आत्मा की पुरखिन हैं।

इन फाइलों के लाल फीते के फन्दे में, फँसे-फुदकते आदमी को जब ख़ामख़्वाह परेशान किया जायेगा तब उसके दिलो-दिमाग की क्या कैफियत होगी—यह बुद्धिमान को बताना या समझाना उसकी बेइज्जती होगी! ख़ुदा का शुक्र! बेगम साहिबा हमारी कापी से ज्यादा हुशियार और समझदार हैं। ये हमारी मजबूरियों तथा मुसीबतों को भलीभाँति महसूस करती हैं। हमें छेड़ती नहीं। वह जानती हैं, यह बैल तो एक जगह बँधा ही है, यदि मैं भी बाँध लूँगी, तो दूसरी बाँध यह बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। तड़पकर मर जायगा। फिर हमारी बखिया बैठ जायगी। चौबीस घण्टे 'चैं-चैं' करनेवाली, हमारे पेट की यह [illegible] चीनाबादाम एवं रसगुल्ले के लिये [illegible]। पैसा कमानेवाला तो एक ही बैल है। मैं इन 'चैं-चैं' करनेवाले बच्चों के लिए पैसा कहाँ पाऊँगी? फिर [illegible] आफत पड़ जायगी! रस की वृष्टि कर सारी सृष्टि की सेहत और शान्ति को सत्यानाश में मिलाने वाली ये ज़ालिम आँखें, [illegible] कर देंगी। ये सुर्ख होंठ, काली जुल्फें [illegible] रह जायेंगे, जिनकी [illegible] नहीं, केवल [illegible] रह जायगा।

जीवन की एकरसता के महासागर में डूबे आदमी को, [illegible] की रङ्गरेलियों का कुछ पता नहीं होता कि कहाँ क्या हो रहा है। वह तो अपने चर्खे के कातने में इतना तल्लीन, ऐसा तन्मय होता है कि [illegible]

बड़े योगी-यती भी उसकी समाधि के सम्मुख साष्टांग करें। फाइलों में जब हम डूबते हैं तब अपने को एक विचित्र संसार में पाते हैं, जहाँ भगवान, ईमान, सच्चाई और स्वर्ग का इतना बड़ा और कड़ा विरोध है कि संसार के बड़े-बड़े विख्यात नास्तिक भी वैसा विरोध न कर सके होंगे। लगता है, जैसे फाइलों की प्रत्येक पंक्ति में शैतान शान से बैठा, ठहाके लगा रहा है। इस ईमान, भगवान, सच्चाई और स्वर्ग को अँगूठा दिखा रहा है। झूठे गवाह, बेईमान मुद्दई, शैतान मुद्दा-लेह और सर्वोपरि सर्वगुण-सम्पन्न, गवाह बनानेवालों और इन शैता-नियों में चार चाँद लगानेवाले ये गाउन, शेरवानी, पतलून-कोटधारी कानूनदाँ! हे भगवान! हे भगवान! तुम रोओ अपने नाम पर, अपने काम पर कि ऐसे रत्नों की सृष्टि की। और रोओ अपने कर्म के परिणाम पर!

मगर हम घिसे जा रहे हैं! घिसे जा रहे हैं!! फाइलों के कागज के कोने में 'नोट' दिए जा रहे हैं—दिए जा रहे हैं! दनादन, बेरोक। और हम जो यह 'नोट' दिए जा रहे हैं, वह किसी की मुकद्दर पर मुग्दर मार रहे हैं या माला चढ़ा रहे हैं, हमें इसका तनिक भी पता नहीं, और पते की आवश्यकता भी नहीं। किसे इतनी फ़ुर्सत है जो हर बात का पता लगाता चले। हमें तो चक्की पीसना है! पीसना ही हमारा काम है। दनादन पीसते जायँगे। अब इस चक्की में गेहूँ पीसा जाय या किसी का सिर पीसा जाय। हमें इससे क्या मतलब? सिर वाले अपना सिर बचावें! सिर नहीं डालकर गेहूँ डालें। खुलासा यह कि हमसे मिलें-जुलें। हमारी खातिर तवज्जह करें और अपना सिर बचाकर दूसरों का सिर डाल दें, हम फौरन पीस देंगे!

यों तो साहब, ईमान की बात यह है कि हम पीसने और खुद पिसानेवाले किसानों को शहर का कुत्ता भी काटने को नहीं पूछता, परन्तु जो हमारी चक्की के चक्कर में न-खुशी, न-शोक, होशो-हवास

दुरुस्त, खुद आ फँसता है, तो वह फौरन हमें अपना खाना समझने लगता है। हमारी खातिर-तवज्जह अपने-आप करने लगता है। कभी दही लाता है, कभी दूध। कभी घी, कभी गुड़। कभी रुपया, कभी मोहर। सच पूछिए तो यही 'टानिक' हमें इतनी कड़ी पिसाई और जुताई पर भी संसार में टिकाए रखता है, नहीं तो कभी हमारे कुनबे और बिरादरी के लोग 'टी० बी०' से टें बोल गए होते! मगर वाह रे चाँदी, सोना! गजब का 'विटामिन' है तू यार!

और, वाह री हमारी लोकप्रिय सरकार! हम बदकिस्मत किरानियों के कर्म (भाग्य) को कमाल और जमाल हासिल करने के लिए, क्या खूब सोचकर निकाला—"कन्ट्रोल"!

आप जान लें, यह 'कन्ट्रोल' हमारी बिरादरी के लिए कल्पतरु और कामधेनु प्रमाणित हुआ। बड़े-बड़े धन्ना सेठ हमारे पैरों के अँगूठे पर नाक रगड़ने लगे। और हमारे द्वार पर प्रतिदिन सवा पहर सोना बरसने लगा। जिस 'कन्ट्रोल' की दूकान पर गए, कृष्ण-कन्हैया की तरह पूजे गए। सेठों ने मुझे अपनी गद्दी के मसनद पर ओठँगाया। हजारों रुपयों की मोटरों पर टहलाया। हमारे द्वार पर अन्न, वस्त्र, तेल, चीनी, कोयला, [illegible] विक्रेता का मेला लगने लगा। कोई पैर पड़ता। कोई हाथों में एक-आध मुट्ठा नोट थमा देता। नोटों के बण्डल जेबों में [illegible] जाते, जेब फटने-फटने को होने लगती। जो पैसा हम अभागों के लिए कभी गूलर का फूल था, वह कङ्कड़ और धूल की तरह सहज सुप्राप्य हो गया। हम रामकृष्ण की पूजा परित्याग कर 'कन्ट्रोल भगवान' के [illegible] लगे। [illegible] पर [illegible] और [illegible] के लिए मुँह लुकाने वाला किरानी, अमीरों से होड़ लेने की बात सोचने लगा। [illegible] लोगों के [illegible] गए। नाक की कील में हीरा चमकने लगा और [illegible] में पुखराज [illegible] लगा!

हमारी कदर बढ़ गई। हर जगह पूजा होने लगी। मेरा मूल्य अमूल्य समझा जाने लगा। मतलब कि घर और बाहर दोनों जगह हमारी इज्जत होने लगी।

किरानियों की बासी और सड़ी जिन्दगी में एक बड़ा पुरजोर तूफान आया—एक तूफानी क्रान्ति आई। हताश, निराश, थके-माँदे मुर्दे से हमारे हमपेशा लोग, बड़े मजेदार आदमी हो गए। वे चौक पर पान खाने लगे। कोठे की किन्नरियों से आँखें मिलाने लगे।

हमने देखा, हमारे दोस्त जनाब मौलवी अकरम खाँ, अपनी सौ-में-सौ सफेद दाढ़ी को काले रङ्गों में बोते, सूखी आँखों में सूर्मे की बारीक लकीर खींचकर सरस बनाए, रेशम का अङ्गा-पाजामा पहने, कहीं बड़ी परेशानी से तशरीफ ले जा रहे हैं। जो बेचारे भाई अकरम अपनी जिन्दगी को अकारथ समझते थे, अब उनकी वही जिन्दगी कृतार्थ हो गई। चालों में तेजी आ गई—थके शरीर में स्फूर्ति और बूढ़े मन में जवानी की रवानी! मानो जिन्दगी फिर से शुरू हुई।

और जिन्दगी जब फिर से शुरू हुई तब जिन्दगी के सारे सरो-सामान, साजो-सरञ्जामा फिर से शुरू होना ही चाहिए। घर में तो वही साठ साल का पुराना साजो-सामान था। वही बाल-बच्चों का दिल उबाने वाला 'मैं-मैं', वही बूढ़ी औरत, जिसके मुँह में दाँत और आँखों में रस नदारत। भाई अकरम इससे बहुत पहले से घबरा गये थे, पर करते क्या? मजबूरन इस पुराने और फूटे ढोल को बजाए जा रहे थे। मगर अब क्यों बजाते? वे [illegible] और [illegible] के [illegible] में खासी दिलचस्पी [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]! [illegible] पर की [illegible] दिलो-जान से कुर्बान हो गए।

इसमें शुबहा नहीं, माशूक तलाश करने में भाई अकरम को [illegible] थी, न [illegible] की भी, न शऊर! बेशक [illegible] को भगवान

ने बड़ी लगन और प्रेम से बनाया था। क्या होंठ, क्या नाक, क्या आँखें, क्या भौं; गोया सारा शरीर सुन्दरता की खान था। और ताज्जुब यह कि भाई अकरम बड़े गर्व से हमलोगों से अपनी छाती चौड़ी कर कहते—"भाई, मैं क्या कहूँ, उस परी ने फरिश्ते का दिल पाया है, फरिश्ते का दिल! मुझे अपने बेटे से भी बढ़कर प्यार करती है। जी!"

फजलू जरा वाचाल था, वह फौरन कहता—"बेटे से बढ़कर या बाप से बढ़कर अकरम भाई!"

अकरम भाई गुर्राकर कहते—"चुप नासमझ, तू क्या जाने, इश्क क्या चीज है। जा, कचहरी का कूड़ा फेंक!"

फजलू—"कचहरी का कूड़ा तो तुम भी फेंकते हो भइया! हाँ, अब पान का कूड़ा भी ढोने लगे!"

अकरम भाई तिलमिलाकर भागे जाते। मगर फिर भी वह पानवाली के गुण-गान करते न थकते, न अघाते। मित्रों की मण्डली में, दफ्तर की मेज पर, राह में, बाट में, हाट में—जो भी मुलाकाती मिल जाता, चाहे उस मुलाकाती को या खुद भाई अकरम को जैसा भी जरूरी काम क्यों न हो, उसे रोककर घण्टों पानवाली के सम्बन्ध में बातें करते—वह कितना उन्हें प्यार करती है, कितनी वह सुन्दरी है, खुद वे भी उसे कितने दिलोजान से चाहते हैं—आदि। बिना थके पहरों पागल की तरह बकते रहते। उनकी बातें सुनने वाला उनकी बातों से घबरा रहा है, ऊब रहा है, बिना किसी दिलचस्पी के सुन रहा है, या नहीं सुन रहा है, इसकी परवा किए बगैर भाई अकरम पानवाली की प्रशस्ति गाये जाते, गाये जाते।

सुना है, प्रेमी या प्रेमिका की चर्चा, बखान या बड़ाई करने पर बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। सो, भाई अकरम ऐसी आनन्दोपलब्धि

से वञ्चित क्यों होते ? भले ही उस परम आनन्द का हिस्सेदार यानी श्रोता घबराकर 'त्राहि' पुकार दे।

मगर हर चीज का असर हर चीज पर एक-सा नहीं होता। कहीं-कहीं प्रचार से साम्राज्य-का-साम्राज्य ध्वस्त एवं नष्ट हो गया है और कहीं-कहीं प्रचार से, बना काम भी विनष्ट हो गया है। कहते हैं, इश्क का प्रचार करना अपने हाथों अपना संहार करना है—

इश्क के राज को किसी से नहीं कहना अच्छा!
हो सके इसको तो जब्त ही करना अच्छा!!

मगर यह अभागा इश्क है जो लाख कोशिश करने पर भी जब्त नहीं होता। एक दिन पानवाली मेरी राह रोककर खड़ी हो गई। मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ। आप मुझे दकियानूस कहें या पोंगा-पंथी, मुझे भारतीय नारी-मर्यादा पर पाद-प्रहार करने वाली स्त्री से घोर घृणा है। मैं ऐसी औरतों की छाया तक से घबराता हूँ। मेरी नाक-भौं चढ़ी देख वह पानवाली बड़े विनीत एवं मृदु स्वर में बोली—"सरकार से एक अरज है। आप लोग बड़े और भले आदमी हैं। आप लोगों से किसी की माँ-बेटी की लज्जा लूटने की नहीं, बल्कि उसे बचाने की उम्मीद की जा सकती है। मैंने भला आप लोगों के साथी—इस बूढ़े मियाँ अकरम का क्या बिगाड़ा है जो तमाम जगह मेरी निन्दा, मेरी बुराई करता चलता है। मैं उस खूसट की लड़की के बराबर हूँ। आप जरा समझा दीजिए, मेरी निन्दा न करें; नहीं तो नतीजा इतना बुरा होगा कि जिन्दगी भर मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगे।"

मैं चौंककर बोला—"अरे, तो तुम्हें अकरम से कोई मतलब नहीं है ?"

वह क्रोध से बोली—"आप भी क्या कहते हैं, सरकार! मैं उस दाढ़ीजार को झाड़ू मारने को भी न पूछूँगी! पहले आपलोगों से

कहला देती हूँ, अगर इसपर भी उनकी जबान बन्द न हुई तो बीच बाजार में उन्हें झाड़ुओं से पीटूँगी। तब वे समझेंगे कि झूठ-मूठ किसी शरीफ को बदनाम करने का क्या फल होता है!"

अब मैंने समझा, मियाँ अकरम झूठे ही मन के लड्डू खाते हैं। पानवाली बेचारी शरीफ औरत है। मैंने कहा—"अकरम हमलोगों की बात नहीं मानेंगे। वे तुमपर बहुत जोर-शोर से फिदा हैं।"

पानवाली—"ठीक है, तो इसका मजा भी चख लेंगे।"

पानवाली चली गई। मैं सारी रात यह सोचता रहा—यह अकरम भी कैसा है। खुद भी बदनाम हो रहा है और उस बेचारी को भी कर रहा है। आखिर इस गुनाह-बेलज्जत से, इस कम्बख्ती के मारे को क्या मजा है?

सवेरे उठते ही अपनी श्रीमतीजी से यह सुसंवाद सुनाया—तुम्हारे दोस्त जनाब अकरम साहब अपनी किसी पानवाली प्रेमिका के निमन्त्रण पर रात बारह बजे, सज-धज, प्रेमाभिसार करने गए। पर प्रेमिका की जगह उन्हें मिली चुड़ैल—एकदम खाँटी चुड़ैल! काली, भयावनी, हाथों में चमचम करती कटार लिए हुए। मियाँ को खूब मारा, सारे कपड़े छीनकर नंगा कर दिया। बिल्कुल बेहोश हैं मियाँ! योंही नङ्ग-धड़ङ्ग सड़क के किनारे पड़े थे। अभी खाट पर लदे घर आए हैं। यह है इश्क का मजा! हीः हीः हीः!

आखिर हम पुरुषों की पराजय पर इन देवियों को इतनी ज्यादा प्रसन्नता क्यों होती है? हमने इनका क्या बिगाड़ा है? यदि वे आरम्भ से ही तो हम पुरुष इनके कोपभाजन रहे हैं। [illegible] ऐसा विद्वेष?

मैं अकरम के घर दौड़ा। वहाँ भीड़ काफी थी। हमारे कई [illegible] भाई भी उपस्थित थे, जो अकरम भाई को बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे। अकरम का चेहरा मारे गम के भयानक, [illegible]

बिल्कुल काला पड़ गया था। वे जब भी ज़रा होश में आते, चीख पड़ते—"चुड़ैल-चुड़ैल ! बचा—बचा !! माफी—माफी !!! बस कर, अब मत मार ! मरा-मरा ! आह-आह !! चु-चु-चु-ड़ै-ल-अ-अ !"

और फिर तुरन्त बेहोश हो जाते। इनकी बेगम बहुत घबराई थीं। चार सयाने चुप बैठे, कुछ मंत्र गुनगुना रहे थे। अकरम के शरीर पर लाल-लाल बेशुमार दाग थे, मानों बड़ी बेरहमी से पीटे गए हों।

सयाने कह रहे थे—"चुड़ैल काफी ज़बरदस्त है, पकड़ में जल्द आती ही नहीं, मगर बगैर पकड़े हम जाएँगे भी नहीं। थोड़ी शराब और लोहबान और मँगाइए।"

पानवाली की बात सुनकर उस समय मुझे अकरम से बड़ी नफरत हो गई थी। पर पानवाली की यह हरकत देखकर अकरम पर दया आ रही थी। मैं यह निर्णय नहीं कर पाता था कि भाई अकरम को महज़ इश्क-जैसी साधारण वस्तु के लिए—जिसमें आजकल के बड़े-बड़े राजे, सेठ-साहूकार गिरफ्त हैं, इतना कठोर दण्ड क्यों दिया गया ? मात्र इनकी शैतानी समझकर या बेचारे को एक किरानी समझकर !



ढूँढ़ने से भक्त को भगवान, भूखे को पकवान, तपस्वी को वरदान और हैवान को भी इन्सान मिल जाते हैं, बशर्ते लगन सच्ची हो, धुन पक्की हो और मन धुनी हो। तब दुनुरेवाला कामिनी-कौशल साहिबा से मुलाकात, उनकी कृपा और उनके [illegible] के [illegible] की प्राप्ति कोई ऐसी अनहोनी या बड़ी बात नहीं, जो न हो।

मुझे मालूम नहीं कि कामिनी-कौशल जी महोदया से बढ़कर इस संसार में कोई और सुन्दरी, सुगन्धी, सलोनी या सुकुमारी [illegible] है, या नहीं, क्योंकि चाँद से हैं [illegible] पर्दे के भीतर। वे कामिनी कौशल जी की भाँति "पर्दे पर" नहीं आतीं। और आतीं भी तो वे वैसी नहीं इठलातीं, इतरातीं, बलखातीं, मटकतीं, ठुमकतीं या मुसकरातीं,

जैसा सुन्दर, हृदयग्राही कामिनी-कौशल जी इठलातीं, मचलतीं, रूठतीं, ठुनकतीं और इतराती हैं ।

अगर आप भगवान जी महाराज को मानते हों, तो उनको साक्षी देकर कहिये, जब कामिनी-कौशल जी 'पर्दे पर' आती हैं, तब आपका दिलो-दिमाग कैसा बेपर्द होकर सर्द हो जाता है, और कैस-फरहाद के जोश में कूँचकू गर्द उड़ाने और फाँकने को मचल जाता है । बूढ़ों को एक बार अपनी जवानी याद आ जाती है, जवानों को अपनी आह भरी कहानी, और प्रौढ़ों को एक अजीबो-गरीब हैरानी और परेशानी---!!

खुदा-न-ख्वास्ता मुझ बदकिस्मत के भी दिल-दिमाग में कैसो-फरहाद की तरह "नादानी" का बवंडर उठ खड़ा हो तो, यह अपराध मेरा नहीं, अपराध कामिनी-कौशल के बनाने और सँवारने वाले का है । कारण कि अच्छी चीज किसे नहीं भाती, सुहाती या ललचाती ?

हमारा "हरम"---जो चन्द तिनकों का है---और जिसमें हम मात्र दो जन हैं, हम और हमारी "मल्का" । उनकी नाराजी का बायस यह है कि "हरम" में "मल्का" के होते हुए भी, हम, यानी उनके शौहर, अपने घर के गौहर की नाकद्री, कर बाहर की लीद और गोबर के लिए क्यों नाक धुन रहे हैं, और साथ ही "जौ" के साथ मुझ "घुन" को क्यों पीस रहे हैं । अगर ऐसा होगा तो घर में "पीस" यानी शान्ति नहीं रहेगी ।

जिस घर, गाँव या देश में "पीस" नहीं रहती उस घर, गाँव और देश को फिस्स् ही समझिये । फिर होगा क्या---? संघर्ष और संग्राम---! जिस अभागे संघर्ष और संग्राम को रोकने-थामने के लिए बड़े-बड़े लोग कुहराम मचा रहे हैं । इनाम बाँट रहे हैं । जिस संग्राम अभागे ने "एटमबम" जैसी महाभयानक संहारक वस्तु की सर्जना की, वह [illegible] हमारे घर में हो तो, फिर घर, घर न रहकर पूरा [illegible]

हो जायगा। बड़ी ही विनम्र वाणी में मैंने इसे अपनी "मलिका-मुअज्जमा" को समझाया। तो—

वह तुनुक कर—गो उनकी इस तुनुक में कामिनी कौशल की छटा की घटा तथा साकार कला न थी, पर थी कुछ अवश्य—बोलीं—"दुनिया की कोई औरत अपने को किसी गैर औरत से बदसूरत नहीं समझती, और यही कारण है कि कोई औरत किसी औरत पर कभी आशिक नहीं होती। अगर किसी औरत का मर्द अपनी औरत के बावजूद किसी गैर औरत से मुहब्बत करता है, तो वह अपनी औरत का घोर अपमान करता है। औरत, मर्द का जूता-लात या और कोई अत्याचार सहर्ष सहन कर सकती है, परन्तु यह महा अपमान नहीं सह सकती। इसी कारण जब और जहाँ ऐसा प्रसंग आता है, सीधी से सीधी औरत तुरन्त पाद-प्रताड़ित पन्नगी की भाँति, अपना फन काढ़कर फुंकार मारने लगती है और सब कुछ करने पर आमादा हो जाती है।

मेरी "मलिका" की बात सोलह आने सच है। इसमें न विवाद की आवश्यकता है न सन्देह की गुञ्जाइश। कोई किसी की जीवन-नैया को छीन ले अथवा उसे डुबो दे, उसके लिए आदमी अपने प्राण तक बलिदान कर सकता है। मगर इसके साथ ही यह सवाल भी हो सकता है—

"जब दिल न हो काबू में, तो क्या मेरी खता है?"

और साथ ही यह भी निर्विवाद है कि दिल को काबू में करना कोई मजाक नहीं है। जब बड़े-बड़े योगी, यती, पण्डित तथा ब्रह्मज्ञानी न कर सके, तो मुझ जैसे अज्ञानी की क्या बिसात, क्या हस्ती?"

दिल की इन मजबूरियों का पुरदर्द इजहार मैंने अपनी "मलिका" से किया, तो आप बोलीं—ऐसा ही मजबूरी-बेजार दिल तो हम औरतों का भी है। मगर जब हम कुर्बान पर अपनी जान देती हैं, तो मुछैलों का समाज कौओं की तरह काँव-काँव क्यों करने लगता है, जनाब!

मैंने अर्ज किया—हुजूरेआला लोग घर की इज्जत हैं। आपके पग यदि विपथ पर पड़ेंगे तो घर की नाक कट जायगी।

"यही तो आपलोगों की चालबाजियाँ हैं। मेरी बेर नाक कट जायगी और अपनी बेर खानदान की इज्जत में सुर्खाब के पर लग जायँगे। मैं आप लोगों की यह दलील बनाम चालाकी नहीं मानती। यदि खान्दान की इज्जत धूल में मिलेगी तो औरत, मर्द दोनों की चलन से, बनेगी तो दोनों की चलन से।" ऐसा फरमाया श्रीमतीजी ने।

मैं चुप हो रहा। मैं जानता हूँ, विवाद से कुछ होता-जाता नहीं, बल्कि लाभ के बदले हानि ही होती है।

मगर हुआ यह कि मैं अभी कामिनी-कौशल से भेंट-मुलाकात की बात ही सोच रहा था कि उधर से, यानी मेरी 'मलिका' की ओर से इश्की-अमल शुरू हो गया। प्रतिदिन मेरे घर एक १८–१९ साल का, बड़ा खूबसूरत छोकरा आने-जाने लगा। एक रोज मैंने उस छोकरे से पूछा—भई, तुम मेरे यहाँ रोज, बिना मुझ मालिक की आज्ञा के, क्यों आते-जाते हो—? तुम हो कौन—"

वह जरा अकड़ता-सा, एक अजीब किस्म की जनानी अँगड़ाइयाँ लेता, और मटकाता बोला—जनाब, मैं नर्त्तक हूँ नर्त्तक, यानी नट, मतलब नाचनेवाला।

मैं घबराया। भला मुझ भलेमानस के घर इन नाच-काछ वाले आवारों और बदचलनों की क्या जरूरत? पूछा, तुम यहाँ क्यों आते हो—? नाचने—?

वह उसी तरह ऐंठता, मचकता-सा बोला—जी, नाचने नहीं, नाचना सिखाने—!!

—ऐं—!"—मैं भड़ककर बोला—"नाचना सिखाने—? किसे—?

"इस घर की बीबी जी को—।"

मैं और घबराया। बोला—क्या बकते हो तुम ? इस घर की बीबी जी भला नाच सीख कर क्या करेंगी ?

"मैं बकता नहीं, सच कहता हूँ। इस घर की बीबी जी नाच इसलिए सीखती हैं कि उन्हें एक थियेटर में नाचना है।" उसने जवाब दिया।

मारे गुस्से के मेरा भेजा भिन्ना गया। मैं चिल्ला कर बोला—चुप नामाकूल, मारूँगा वह चाँटा कि सारा नाच....। खबरदार, जो अब कभी अपने घर तुम्हें मैंने देखा। क्या समझा है ? कमीनों का घर है यह ?

देखा, सामने साक्षात् 'मलिका' आ गयीं। और बड़े व्यङ्ग लहजे में बोलीं—यह आपका जुर्म है कि कोई किसी "कला" को सीखे और आप उसे भला न कहें। नाच क्या बुरा है—? शिव नाचे, कृष्ण नाचे, नारद और शारद नाचे !

मैं तनिक झुकक कर बोला—चुप रहो, तुम शिव, कृष्ण और नारद नहीं, एक साधारण [illegible] हो। झुकने वाली आलि—!

वह बोली—मुझे झुकने की जरूरत नहीं। मैं [illegible] ! थियेटर में पार्ट जरूर करूँगी।

आज जब नृत्य और अभिनय ही स्त्रियों की महान् सफलता की चरम सीमा माने जाते हैं, तो मैं किससे कम हूँ, कि पीछे रहूँ।

मैंने कहा—खुश सफलता की सीढ़ी पर चढ़ो। मगर मेरा मकान छोड़ देना होगा।

उत्तेजित स्वर में वह बोलीं—छोड़ देना होगा नहीं, मैं अभी छोड़ देती हूँ।

और वह उसी वक्त के साथ तुरन्त मेरे मकान के बाहर हो गयीं और उनके मकान से बाहर होते ही मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानों इस मकान की रूह निकल गयी। एक अजीब डरावने सन्नाटे, एक

विचित्र सूने-सूने वातावरण तथा घोर असह्य उदासी के अन्धकार में सारा मकान डूब गया। केवल एक उनके बिना, मकान श्मशान और बियावान हो गया। मैं बहुत घबराया। मगर सोचा, मैं मर्द हूँ। मुझे हिम्मत से काम लेना चाहिए। वह गयीं तो जायँ। मगर मैं बगैर कामिनी-कौशल जी से मुलाकात के न मानूँगा, न मानूँगा।

अपनी बिखरी हुई हिम्मत को मैंने कस कर बटोरा, पकड़ा और सारी रात कुर्सी पर बैठे-बैठे बिता दी। दूसरे दिन सुबह मुँह-हाथ धोकर मैं ज्यों ही सड़क पर आया कि दीवारों में चिपके कई विज्ञापन देखे। जब मैं सटे विज्ञापन के पास पहुँचा, तो मेरा मिजाज सख्त हो गया। पैरों तले से पृथ्वी खिसकती जान पड़ी और लगा जैसे १९३४ का विनाशकारी भूकम्प फिर आरम्भ हो गया। मैं चक्कर खाकर वहीं बैठ गया। फिर सँभला, फिर उठा। और फिर उस विज्ञापन के पास गया।

आँखें मलकर और धीरज बाँध कर मैं उस विज्ञापन को देखने लगा। उस विज्ञापन में मेरी 'मलिका' महोदया की एक अत्यन्त सुन्दर तस्वीर, मन्द-मन्द मुस्काती, नृत्य की मुद्रा में, अभिनेत्रीनुमा—छपी है। और तस्वीर के नीचे लिखा है—

मणिपुरी, कथाकली तथा कत्थक-नृत्य की संसार-प्रसिद्ध [illegible] श्री मृणालिनी देवी का शास्त्रीय नृत्य, आज रात को रंगमंच पर जरूर देखिये और जीवन सफल कीजिये।

हे भगवान्! यह है औरत जात की नीचता और मूर्खता का नमूना—! जिस दिन यह अभागिन मृणालिनी, जिसे मैं आदर से "मलिका" कहता था, नगर के हजारों हजार नर-नारियों के सामने बेपर्द होकर नाचेगी, लोग आवाजें कसेंगे, मुस्करायेंगे, उसे मैं किस पत्थर के कलेजे से सहन करूँगा और किस हिम्मत से लोगों को अपना मुँह दिखलाऊँगा। उफ्—! मेरे रोंगटे खड़े हो गये। कलेजा

धक्-धक् करने लगा। और लगा, मैं तुरत बेहोश हो जाऊँगा। मैं शीघ्र वहाँ से भागा और घर आकर खाट पर गिर पड़ा। सारा शरीर मारे पसीने के तरबतर हो रहा था। कण्ठ सूखकर काँटा हुआ जा रहा था। और मन करता था कि नयी विधवा की तरह राग भर-भर के खूब रोऊँ, खूब रोऊँ—! इतना कि मेरे घर में आँसुओं की बाढ़ आ जाय और उसी बाढ़ में बहकर मैं रसातल चला जाऊँ, जिसमें न कोई मेरा मुँह देखे, और न मैं किसी का मुँह देखूँ।

तभी मेरी नजर कामिनी-कौशल की तस्वीर पर पड़ी, जिसे मैंने बड़े स्नेह तथा सम्मान से अपने शयनागार में लटका रखा था। चित्र में चित्रित कामिनी-कौशल की मृदु मुस्कान, सरस कटाक्ष मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई भूखी नागिन अपना शिकार सामने देखकर मुस्का रही हो। अथवा कोई जन्मजात शत्रु मेरी दशा पर अतीव निर्मम उपहास कर रहा हो—!

एक क्षण में, भूखे बाघ की तरह मैं तस्वीर पर झपटा, और बड़ी बेरहमी से उसे कमरे के फर्श पर दे मारा। शीशा झन् झन् करता अनेक टुकड़ों में बिखर गया। फ्रेम के कई टुकड़े हो गये। फिर तस्वीर को तानतोड़ [illegible] में उछाल दिया।

इसी समय मेरे कमरे में तीन व्यक्ति आये, गोपी, गणेश और गोपाल। तीनों [illegible] [illegible] [illegible] अनर्थ होने जा रहा है। [illegible] [illegible] शहर के [illegible] [illegible] जायेंगी, [illegible] [illegible] [illegible]!

मैं तो खुद मारे घबराहट के [illegible] जाने के लिए तैयार बैठा था, [illegible] नहीं है कोई—? इन [illegible] ने मुझे और [illegible] दिया। मैंने तुरत [illegible] पर [illegible] [illegible] लगायी और उसे [illegible] से

खींचता हुआ चिल्लाकर बोला—जाऊँगा, मैं भी तमाशा देखने, और ज्यों ही वह शैतान स्टेज पर आयेगी, फौरन दो टुकड़े—!

गोपी बोला—मगर पूछना यह है भैया, आखिर भाभी नाचने पर उतरी क्यों—?

मैं—मुझे कुछ पता नहीं। मगर मेरा ख़याल है, वह आवारा हो गयी है।

गोपाल बोला—वह कि आप—?

मैं—चुप—! मैं इस पैंतीस साला उमर में कभी आवारा हो सकता हूँ?

गोपाल—उमर से और आवारागर्दी से कोई मतलब नहीं।

गणेश इन दोनों से ज्यादा समझदार था। मैं उसे देखता हुआ बोला—गणेश, इन्हें ले जाओ यहाँ से। मेरा दिमाग इस समय ठीक नहीं है। बहुत सम्भव है, आवेश में मैं कोई अनर्थ न कर बैठूँ।

शाम को बगल में तलवार छिपाये मैं रूमानी स्टेज की ओर गया। वहाँ जाते ही एक सिपाही ने मेरी तलवार ले ली। मैंने बहुत शोर किया। लोग जुटे तो सिपाही बोला—इनकी औरत आज यहाँ नाचने वाली हैं, यह तलवार उसी की हत्या करने के लिए यह लाये हैं। अतः, मैं यह तलवार कभी वापस नहीं कर सकता और ज्यादा उछल-कूद यह मचायेंगे तो तुरत इन्हें पुलिस में दे लूँगा।

पुलिस का नाम सुनते ही मेरा जोश-जुनून हिरण हो गया। मैंने सोचा, मैंने यहाँ आकर बुरा किया। मगर क्या यह नाच किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता—! मैंने सिपाही से प्रार्थना की—मैं इस थियेटर के मैनेजर से मिलना चाहता हूँ।

सिपाही मुझे अन्दर ले गया। एक सुन्दर युवक अँग्रेजी पोशाक में कुर्सी पर बैठा था। मैंने उनसे कहा—महोदय, आज जिसका नाच होने वाला है, वह मेरी स्त्री है। मैं इस शहर का एक शरीफ

आदमी हूँ। मेरी लाज रखिये, चाहे इसके बदले में आप मेरी धन-दौलत सब ले लीजिये, मगर नाच मत होने दीजिये। नहीं तो मैं मर जाऊँगा।

वह युवक कुछ साहबी ढङ्ग से बोला—मगर आपने तो अपनी पत्नी का त्याग कर दिया है।

मैं—बिल्कुल गलत! मैंने अपनी पत्नी का न तो कभी त्याग किया है, न आइन्दा कभी करूँगा।

युवक बोला—परन्तु इसका प्रमाण—?

मैं—आप जैसा प्रमाण चाहें, मैं देने को प्रस्तुत हूँ।

युवक—शायद आप न दे सकेंगे महोदय!

मैं—दृढ़-परीक्षा लीजिये।

युवक—क्या आप यह लिखने को तैयार हैं, कि आपकी सारी सम्पत्ति पर आपकी पत्नी का अधिकार होगा, और आप सदा उनके आज्ञानुसार चलेंगे?

मैंने कहा—हाँ—! आप अभी लिखा लीजिये।

वह युवक जो-जो कहता गया, वह बिना [illegible] लिखता गया। और भगवान् को असंख्य धन्यवाद है कि मेरा यह महा-अपमान होते-होते रुक गया यानी नाच बन्द हो गया।

अब घर में मेरा अस्तित्व, मात्र एक "मोस्ट-ओबिडियेन्ट सर्वेन्ट" का था। चुपचाप खाना, न चुपचाप दफ्तर जाना, और फिर रात को खा-पीकर चुपचाप सो जाना। जरा 'चीं' तक नहीं करना। एक दिन रात में मेरी 'मलिका' बोलीं—कहिये कामिनी कौशल से मुलाकात हुई? मैं घबरा कर उठ बैठा—लाहौल पढ़िये कामिनी-कौशल पर, उनके नाम पर, उनके मुकाम पर, उनके काम पर—! मैं कान पकड़ कर कहता हूँ, आप यकीन मानिये, कामिनी-कौशल से मुझे अब कतई कोई मतलब नहीं।

वह जरा मुस्काकर बोलीं—मगर कामिनी-कौशल से तो आपकी भलीभाँति मुलाकात हो गयी। आप इनकार क्यों करते हैं ?

मैं हाथ जोड़कर बोला—मुझसे आप गङ्गा उठवा लें, शालिग्राम छुवा लें, मैंने कामिनी-कौशल तो क्या, कामिनी-कौशल की छाया तक से मुलाकात नहीं की।

वह बोलीं—यह जो मेरे नाच का नाटकीय विज्ञापन हुआ, उससे क्या आपको उम्मीद हो गयी कि सचमुच मैं स्टेज पर नाचूँगी ?

मैं—उमीद तो क्या, मुझे दृढ़ विश्वास हो गया था कि आप बिना नाचे नहीं मानेंगी, क्योंकि आप मुझसे हद से ज्यादा नाराज हैं।

वह—बस, यही तो कामिनी-कौशल है, यानी, स्त्री की चालाकी—! यह नाचने का विज्ञापन तो हमारा एक कौशल था, जिससे आप घबरा कर सिनेमा की कामिनी-कौशल के बदले, मुझ गृह की कामिनी के कौशल के चङ्गुल में फँस जाएँ, और सचमुच आप बुरी तरह फँस गये।

मैंने फिर पूछा—तो क्या, सचमुच तुम नहीं नाचती—?

वह बोलीं—कभी नहीं। क्या मेरी अपनी इज्जत नहीं है, जो मैं थियेटरों में नाचती फिरूँगी—?

मैं पराजित की भाँति बोला—हाँ, बाबा, तब तो वाकयी मुझे कामिनी-कौशल से मुलाकात हो गई और बड़ी बलिष्ठ कामिनी-कौशल से—! सिनेमा की कामिनी-कौशल से मुलाकात होने में तो ज्यादा से ज्यादा, हजार दो हजार का नुकसान होता, मगर घर की इस कामिनी-कौशल से मुलाकात होने पर मेरा सर्वस्व ही नहीं, खुद मैं भी बिक गया—! धन्य है कामिनी-कौशल—! भगवान बचाएँ इस कामिनी-कौशल से हम पुरुषों को—!

मुहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है!



एक दिन तड़के ही मेरे पड़ोसी मित्र कविवर श्री त्रिलोचन महाराज 'लोचन' ने बड़े विकल, विह्वल एवं करुण स्वर में यह ग़ज़ल गाई—

मुहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है!

मेरा माथा ठनका। आसार बुरे नज़र आए। सोचा, गाड़ी बड़े बेमौके, बेतरह दलदल में फँस गई है। सुबह [illegible] के गुणगान अथवा ललित, दिन-प्रभात या कामायनी के [illegible] पदों के [illegible] के बदले इस [illegible] मुहब्बत के [illegible] का [illegible] है। अवश्य ही 'लोचन' का [illegible] किसी [illegible] की रंगीन युवती के प्रणय-पाश में फँसता रहा है। [illegible] लाल किरणों के मधुर चुम्बन के [illegible] किसी ललिता-ललाम के [illegible] पर [illegible] हो रहा

है। विश्वप्रेम के विशाल तथा चिर-अमर, नवल-धवल एवं सुशीतल स्नेह की शाश्वत आनन्दधारा में प्रवाहित होने की अपेक्षा, पृथ्वी की किसी परी-पैकर के नाजो-चोंचले की चञ्चल धारा में निष्प्राण काष्ठ-खण्ड-सा प्रवाहित हो रहा है, तभी यह आहभरी कराह और अँगीठी फूँकने की तरह लम्बी लम्बी साँसें आ-जा रही हैं।

नहीं तो सुना है, प्रेम जलने-जलाने की चीज नहीं, अपितु चिरानन्द-दाता, हिमवत् सुशीतल तथा परम शान्ति-दायक है। तभी तो कहा है—प्रेम ही परमात्मा है और परमात्मा ही प्रेम है। इसमें जलन कहाँ?

कि पुनः कवि जी ने गजल की दूसरी कड़ी गाई—

जमीं तो जमीं, आसमाँ जल रहा है!

बाप रे! यह प्रेम क्या है? 'एटमबम्' का भी पुरखा! एटमबम् तो सिर्फ़ जमीन और जमीन पर बसनेवालों को ही जलाता है, परन्तु यह मुहब्बत का एटमबम् सारे जहाँ को ही जलाकर शान्त नहीं होता, आसमाँ तक को स्वाहा कर डालता है। मतलब, हम जमीन पर बसनेवाले जीवों को तो यह जलाता ही है, साथ ही आसमान पर बसनेवाले हमारे पुरखों, देव-दानवों, ग्रह-नक्षत्रों तक को जला मारता है! वाह रे प्रेम! धन्य हो तुम!

परन्तु हे प्रेम! तुम्हें लाखों प्रणाम! भले ही तुम जमीन से आसमान तक को जलाकर खाक कर दो, मगर लङ्का में विभीषण की तरह मेरा घर, मेरे घर के [illegible]: मेरे बाल-बच्चों को बचाना भइया, इन्हें मत जलाना। नहीं तो हमारी दुर्गति [illegible] कम्पाउण्डर, चुनाव में हारे हुए मिनिस्टर और मक्खी मारनेवाले बैरिस्टर से रत्ती भर भी कम नहीं होगी।

गजल की इस एक ही कड़ी को कवि जी ने कितनी बार दुहराया, इसे गिन न सका। मेरा ख़याल है, जितनी देर कवि जी इस गजल

को गाते रहे, उतनी देर में दुर्गासप्तशती, विष्णु-सहस्रनामा तथा श्रीमद्भागवद्गीता कम-से-कम चार बार आद्यन्त समाप्त की जा सकती थी।

कवि जी की जमीन तथा आसमान जिस नाजनी के नेह में जल रहा था, वह नाजनी गाँव की ही एक सुन्दरी कुमारी कन्या थी। कवि जी का उसके पास पहुँचना और पहुँचकर आरजू-मिन्नत करना, पङ्गु का पहाड़ पर चढ़ना था—लंगूर का लालपरी के लिए ललचना था। मैंने कहा—क्यों भइया कविवर ! क्या बात है, आज जो जमीन से आसमान तक फूँक रहे हो !

कवि जी ने मेरी बात सुनकर एक मजेदार कहकहा लगाते हुए कहा—अरे कौन ? रामरुद्दर ! तुम भी यार, सारी रात जगे ही रहे क्या, जो मेरी तरह चार ही बजे 'कुकड़ू-कूँ' बोल उठे।

मैंने कहा—भाई, बात यह है, जब पड़ोस का एक मुर्गा बोल उठा तब दूसरा मुर्गा कैसे चुप रहे ?

कविजी ने फरमाया—अरे यार रामरुद्दर ! कसम अपनी इस कमबख्त मुहब्बत की, हम यार कवि तो रहे थे, निरंकुश कवि ! मगर शायद तुमने [illegible] में जल्दी की। बूढ़े विधाता की तुतली पुत्री [illegible] कविता बोलने आई, जब तुम चल चुके थे। हाँ, जाते जाते उसके आँचल की सौंधी गन्ध लग गयी है तुम्हें !

मैंने कहा—और यार ! तुम्हारे शरीर की सुगन्ध भी मुझे जरूर मिली है !

कविजी ने फिर अट्टहास किया—हा, हा, हा, हा, कैसे मजेदार आदमी हो तुम यार ! अहे वाह ! क्या कहने ! अरे रामरुद्दर, जरा चैतन्य-चूर्ण मर्दन करो। मैं अभी आया।

मैंने कहा—आइए, हाजिर है चैतन्य-चूर्ण।

कविजी अपने होठों के बीच में तीन चुटकी चैनी खोंसते हुए

बोले—भई वाह ! क्या कहने ? तुम सुरती भी ऐसी मजेदार बनाते हो कि सूरत पर सूरत चढ़ जाय !

मैंने कहा—जी, और वह सूरत बिल्कुल मोहनी मूरत बन जाय ?

कविजी इस बार एकदम पिघल गये। बड़े गद्गद स्वर में बोले—भई वाह ! क्या कहने ? इस सूरत पर मोहनी-मूरत की तुमने बेहद खूबसूरत काफिया लगाई ! जानते हो, इसे उर्दू में काफियाबन्दी कहते हैं, जो बड़े-बड़े उस्तादों तक को खाक नहीं आती ! ओफ् ! तबियत फड़क उठी यार रामरुद्दर ! मैं कहता हूँ, तुम जरूर कवि हो !

मैंने कहा—मगर भई लोचनजी, कवि तो रसिक होते हैं....

बीच ही में लोचनजी मेरी बात लोकते हुए बोले—हाँ, हाँ, कवि अवश्य रसिक होता है। जो कवि रसिक नहीं, वह बधिक है—समझो, एकदम बधिक—पूरा बधिक है !

मैंने कहा—तब तो मुझे आप बधिक ही समझिए। मुझमें रस की एक बूँद तक नहीं !

कविजी—अरे मेरे यार, क्या बकते हो तुम, रस बाँस में होता है, फूस-फाँस में होता है, सूखी घास में होता है; अरे, कटे हुए माँस और लाश तक में होता है ! तुम तो आदमी हो—आदमी ! बिल्कुल जिन्दा आदमी और ऊपर से एक महान रसिक कवि के पड़ोसी ! अजी राम कहो, यदि तुममें रस नहीं, तो सारे जहान में नहीं ! हीः हीः हीः हीः !

फिर कविजी कुछ देर ठहरकर बोले—और जानते हो, रामरुद्दर नाना, मेरी कविताएँ अबतक अखबारों में क्यों नहीं छपीं, और मैं उल्लू की तरह अबतक अँधेरे में क्यों पड़ा रहा ? इस रहस्य को मैंने अब जाना, समझा-बूझा है। कविता में जबतक 'घायल-पीर' वाली वास्तविक वेदना नहीं होती तबतक कविता कौड़ी की तीन है ! और वह वास्तविक वेदना कब होगी ? जब दिल में मीठे दर्द का तूफान

उठने लगेगा। और दिल में मीठे दर्द का तूफान तब होगा, जब मीठा दर्द देनेवाला कोई बेदर्द माशूक मिलेगा। सो भई रामचन्द्र! भई वाह! क्या कहने! सौभाग्य ही नहीं, इसे महासौभाग्य, परम अहोभाग्य कहो, कि मुझे माशूक क्या मिला है, बिल्कुल समझो कि एकदम हीरा मिला है—हीरा! कोहेनूर या मरकतमणि भी जिसके सम्मुख मलिन, बिलकुल मलिन एवं दीन है! आः हाः हाः हाः!

मैंने कहा—परन्तु आपने अपने लिए जिस प्रेयसी का निर्वाचन किया है, वहाँ तक आपका पहुँचना आपके लिये बौने के चाँद छूने और शेर की माँद में घुसने की भाँति असम्भव तथा भयानक है।

कविजी—अरे मेरे यार, पुरुषार्थी पुरुषों के लिए न तो संसार में कुछ असम्भव है, न स्वर्ग में! महान कर्मवीर नेपोलियन कहा करता था—मेरे शब्दकोष में 'असम्भव' नाम का कोई शब्द ही नहीं। और मनुष्य जब अपने प्रबल पुरुषार्थ से उस अखिलेश-शक्ति परमात्मा तक को प्राप्त कर सकता है, तब फिर इस हाड़-मांस के पुतले को जो प्रति-दिन हमारे पास-पड़ोस में निवास करता है, प्राप्त कर लेना क्या असम्भव! और फिर मुझ जैसे एक महान कवि के लिये! तुम तो जानते ही हो, कवि महाशक्ति का प्रतीक है।

मैंने तुरन्त ही कहा—जी, जानता हूँ। महाकवि अपनी कलम भर को लौह-लेखनी से लाखों साम्राज्य को हिला-डुला सकते हैं। स्वर्ग के सम्मोहन को भी विमोहित कर सकते हैं! और जहाँ रवि भी नहीं पहुँच सकता वहाँ कवि पहुँच जाते हैं!

कविजी मारे खुशी के मेढक की तरह उछलकर बोले—भई वाह! क्या कहने! खूब खूब! बेशक! बेशक!! अच्छी कही!! अफसोस, हमारे पास कुछ है ही नहीं, नहीं तो तुम्हें अवश्य कुछ पुरस्कार देता।

मैंने कहा—मुझे आपकी केवल कृपा चाहिए। मेरे लिए वही

बहुत है! मगर इश्क है बड़ी भयानक चीज, जरा होशियार रहिएगा! हाँ!

कविजी—अरे मेरे यार, भय-रहित इश्क तो गवाँर करते हैं। जिस प्रेम में पीड़ा नहीं, कष्ट नहीं, उस प्रेम में आनन्द कहाँ? तुम तो जानते ही हो, जिस कार्य की सिद्धि में जितनी ही बड़ी पीड़ा, परेशानी या कष्ट होता है, उसकी सिद्धि—सफलता पर उतना ही बड़ा आनन्द, उमङ्ग और उछाह होता है! बोलो, होता है न? मैं गलत तो नहीं कह रहा हूँ?

मैं—जी नहीं, सोलहो आने सच?

कविजी—और सुनो, परमात्मा पूजा-पाठ, जप-तप से प्राप्त होते हैं। परन्तु प्रेयसी की प्राप्ति का एकमात्र साधन है, उसकी गलियों की परिक्रमा! अच्छा, अब तो आज्ञा दो।

कविजी चले गये और प्रतिदिन अपनी प्रेयसी की गलियों की परिक्रमा करने लगे। और उस बेचारी, बलात् बनी प्रेयसी को इसका पता तक नहीं, कि मेरे पीछे एक महान कवि (?) दीवाना बना फिर रहा है।

× × × ×

जाड़े की शाम—भारी-भारी! और गाँव-गँवई में अर्धरात्रि का रूप धारण करनेवाली। पथ संध्या से ही शून्य हो रहे थे। गलियों में आदमी नहीं, कुत्ते घूम रहे थे। हाँ, किसी दालान या चौपाल पर बैठे कुछ लोग महँगी की समालोचना कर रहे थे—कुछ खेती-बारी की बात कर रहे थे। और कहीं गोस्वामीजी के रामचरितमानस के किसी चौपाई की व्याख्या-विवेचना एवं शङ्का-समाधान, गाँव के रामायणी लोगों के द्वारा हो रहा था!

इसी समय कविजी नंगे-पाँव प्रेयसी की प्रेम-मन्दिर की परिक्रमा करने 'प्रेम-गली' की ओर मुड़े। मकान दोमञ्जिला था, और उसकी एक खिड़की गली में खुलती थी। कविजी उस खिड़की के ठीक नीचे, ऊपर की ओर अपना मुँह उठाए, अपनी प्रेयसी के मधुर स्वर सुनने के लिये कान लगाये, मन्द-मन्द मुस्काते, मौन खड़े हो गये और होठों में ही गुनगुनाने लगे—

मुहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है!

सहसा ऊपर—कोठे पर एक दासी चिल्लाई—अरे, यह तो बड़ा गड़बड़ हो गया सरकार! छोटे बाबू ने 'केटली' में स्याही की बुकनी डाल दी। क्या कहूँ, पानी एकदम गर्म होकर खौल रहा था। अब 'चाय' देर से तैयार होगी। फिर पानी गर्म करना पड़ेगा।

कविजी की प्रेयसी बोली—जाने दे। छोटा लड़का है—नासमझ! 'केटली' का पानी बाहर फेंक दे और उसे धोकर दूसरा पानी गर्म कर।

दासी काफी जल्दबाज थी। बाहर नहीं जाकर उसने वह खौलता हुआ पानी खिड़की से गली में फेंक दिया, और केटली का सारा गर्म पानी छपाक से कविजी के मुँह पर पड़ा, तो लगा, जैसे आसमान से अङ्गारे बरस पड़े! 'उह उह' करते कविजी चीखकर, चीखकर पीछे हटे तो एक पानी भरे गड्ढे में आ पड़े, जो किसी ने अपने घर का गन्दा पानी फेंकने के लिये खोद रक्खा था। मुसीबत पर मुसीबत! सारे कपड़े गन्दे हो गये और बदबू से नाक फट गई। उधर मुँह का हाल और बुरा था। लगता था, मानों सारा मुँह किसी भट्ठी में झोंक दिया गया हो या मुँह पर ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। सारे मुँह पर फफोले उछल आए। सारा मुँह फूल गया। लहर, पीड़ा, जलन—सब अपनी जवानी पर—पूरे जोश में उभर आए।

कविजी जल की खोज में विकल, इधर-उधर दौड़ने लगे। देखा, कुछ दूर पर एक घर के किवाड़ की फाँक से रोशनी आ रही है। बेचारे दौड़े। हड़बड़ाकर ठेला किवाड़। किवाड़ 'चों-चों' बोलता भड़ाक् से खुल गया। भीतर दस-बारह साल के दो बच्चे झपकियाँ ले रहे थे। ताख पर मिट्टी की ढिबरी झुक-झुककर जल रही थी जिससे उजाला तो कम, पर अँधेरा ही अधिक फैल रहा था। भीतर—आँगन के बाद—एक घर में दो सयाने (ओझे), एक औरत का प्रेत उतार रहे थे। चार घरवाले निकट ही बैठे थे। औरत प्रेतावेश में झूम रही थी। सयाने शराब तथा गाँजा के नशे में झूम-झूमकर बड़ी मुस्तैदी से अपने इष्टदेव को चिल्ला-चिल्लाकर बुला रहे थे—धावो ब्रह्म ! दौड़ो सोखा !!

किवाड़ बजते ही लड़के जग गये और ढिबरी के धुँधले प्रकाश में उन्होंने कविजी को, एक विचित्र प्रकार से 'उह-उह' करते सुना और उनका वह काले-काले फोड़ों से भरा भयङ्कर मुँह देखा, तो वे बड़े जोर से चीख उठे और 'बाप-बाप' करते आँगन की ओर भगे। कविजी भी आँगन में पहुँचे और 'उह, पानी-पानी ! जरा पानी' चिल्लाते आँगन में इधर-उधर दौड़ने लगे।

घरवाले बाहर आँगन में आए और कविजी को इस प्रकार दौड़ते भागते, उछलते-कूदते देखा तो बहुत घबराए—"अरे बाबा, यह कैसा गजब !"

अब दोनों सयाने भी बाहर आए और आते ही बोले—देखो, हमारे मन्तर का प्रभाव ! भूत यहाँ आकर नाचने लगा। हमारे इष्ट ने इस शैतान को यहाँ पहुँचा दिया। देखते क्या हो, मारो-मारो-मारो !! जल्दी करो, नहीं तो यह आफत कर देगा।

चारों घर वाले कविजी से लिपट गए और लगे दनादन थप्पड़,

घुस्से-मुक्के-तमाचे से तड़ातड़ पीटने । कविवर की पीड़ा और बढ़ गई । चोट पर चोट पड़ने से वे पागल हो गए । चिल्लाने लगे—"मार-मार ! मुझे खूब मार, मैं भागने का नहीं । मैं जानता हूँ, प्रेम में इससे भी अधिक चोट लगती है । मार-मार और मार ! उह—उह !!"

'भूत-भूत' और 'मार-मार' का जो शोर हुआ तो सारा गाँव जुट गया । कविजी उस समय बिलकुल बेहोश थे । मुँह इतना फूल गया था, फोड़े से ऐसा विवर्ण और भयानक हो गया था, कि सचमुच डर लगता था । बिलकुल भूत की शक्ल हो गई थी । बहुत मुश्किल से कविजी पहचाने गए । लोग बड़े अचम्भे में थे कि आखिर इसका सारा मुँह जला कैसे, और इतनी रात को इस घर में यह क्यों और कैसे घुसा—?

मगर मैं तो इस सारे अचम्भे से परिचित था । हँसी बेतरह छूट रही थी । मुश्किल से दाबे हुए था । सबेरे जब कराहते-कलपते कविजी मेरे पास आए, तब मैंने छूटते ही कहा—भई वाह ! क्या कहने हैं । कमाल कर दिखाया आपने ! बेशक ! बेशक !! खूब ! खूब !! अब इतने कष्ट-सहन, पीड़ा-सहन करने पर भी क्या सिद्धि नहीं मिलेगी ?

कविजी जरा चिढ़कर बोले—बड़े शरारती हो तुम, यहाँ सारा मुँह जलकर खाक हो गया है, मार से शरीर टूट रहा है और तुम्हें मजाक सूझती है !

मैंने कहा—कविजी, जरा आग्नेय-शक्ति की महती कृपा से यह अच्छा ही हुआ कि इस मुहब्बत निगोड़ी का असर केवल आपके मुँह पर ही हुआ, नहीं तो इस बड़भागी मुहब्बत में, बजाय आपके, कहीं जमीन और आसमान जल जाता तो क्या आफ़त होती ? कुछ पता है कविजी ! सारा संसार स्वाहा हो जाता और सारे लोग आपकी ही तरह 'हूँ-हूँ' करते ! दरिया, नदी, पोखर, आहर, कुँए या झील में तड़पते-छटपटाते होते ! मुँह की आग बुझाने को पानी तक नहीं मिलता ।

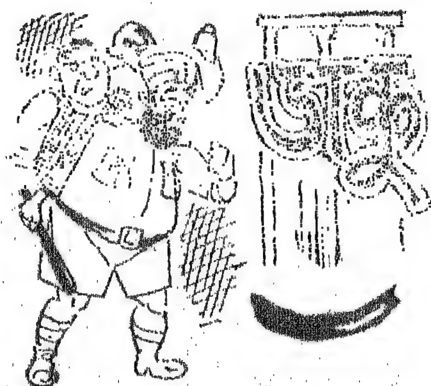
सुनने भर की देर थी कि कविजी तीर की तरह कमरे से बड़बड़ाते हुए निकल गए। हमारा ख्याल है, अब वे अपनी गजल—

मुहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है'

को यों गा रहे होंगे—

मुहब्बत में मेरा तो मुँह जल रहा है !
जमीं तो जमीं, आसमाँ हँस रहा है !!





प्रायः एक बजे रात में मेरी श्रीमती जी मुझे ज़ोर-ज़ोर से झक-झोर कर जगाती हुईं, घबराहट भरे स्वर में बोलीं—अजी, उठो भी, वह सुनो बड़ा हल्ला मचा है, लाला गिरधारीलाल के घर में डाकू घुसे हैं।

आप ज़रा गौर फरमाइये, इस मुसीबत को—बर्फ़ उगलनेवाले जाड़े की एक बजे की रात, लिहाफ से गर्म देह, मीठी-मीठी नींद में बेसुध पड़ा आदमी, डाकू के पीछे नङ्गे बदन दौड़ने के लिये जगाया जाय, तो उस बेचारे को कितनी झल्लाहट होगी। कितना बुरा मालूम होगा!

और यह डाकू कम्बख्त भी एक ही मरदूद होते हैं, चले हैं जाड़े में डाका डालने! और चले भी तो पकड़ क्यों गये? होशियारी से काम करते?

इतने में श्रीमती फिर बोलीं—अजी, उठो ! उठो !! उठो !!!

मुझे लगा जैसे कोई मुझे कैदखाने में घसीटते ले जा रहा है । मैं उन्हें फटकारता हुआ बोला—क्या बकबक लगा दी ! मैं इस जानमार जाड़े में कहीं नहीं जाता-आता । चाहे किसी के घर में डाकू घुसे या शेर ! मैंने दूसरी ओर करवट फेर ली ।

किन्तु श्रीमती को तो डाकू पकड़ने जाना नहीं था, जाना था मुझे ! उन्हें जाना होता तो आँटे-दाल का भाव मालूम हो जाता । वह फिर मुझे झकझोरती हुई बोलीं—अजी वाह ! धन्य हो तुम । मुहल्ले वाले तो बेचारे लुट जाएँ, और तुम पड़े-पड़े खर्राटे लेते रहो ! क्यों ?

मैं फिर झल्लाकर बोला—मुहल्ले वाले लुटें, या मरें, मैंने किसी का ठेका ले रखा है, थोड़े ? न मैं थानेदार, न चौकीदार, न गाँव का सरदार ? फिर मैं क्यों इस कड़ाके के जाड़े में जान देने जाऊँ ? यदि मुझे शीत लग जाए, निमोनिया हो जाए तो, करेंगे रुपए पैसे से मदद गिरधारी दास ? ऊँ ?

श्रीमती बोलीं—तो तुम्हारे घर भी आग लगे या पानी बरसे, वह भी झांकने नहीं आवेंगे ।

मैंने कहा—मत आवें, मेरी बला से ! मगर मैं इस समय इस जाड़े में मरने नहीं जाता !

श्रीमती—नहीं जाओगे ? अरे, राम, राम, तुम्हें ऐसा कहते जरा भी शर्म नहीं मालूम होती ।

मैं—शर्म ? शर्म काहे की ? क्या मैंने कहीं डाका मारा है क्या ?

श्रीमती चिढ़कर बोलीं—तुम्हारे जैसे बुज़दिल एक चुहिया तो मार ही नहीं सकते, डाका क्या मारेंगे ? तुम्हारी अक्ल में डाका मारना बड़ा आसान काम है क्या ? अभी होश में आइये हज़रत ! डाका मारने वाले का कलेजा गज भर का होता है, गज भर का ! जो एक बार मौत से भी मुकाबला करने की हिम्मत रखता है !

तुम्हारी तरह वे जाड़े व पाले से नहीं डरते? वे गुलबदन बीबी नहीं, वीर शेरबब्बर होते हैं!

मुझे उनकी बात कुनैन से भी ज्यादा कड़वी लगी। मैं उन्हें ललकारता बोला—बड़ी शेरनी बनी हो तो तुम्हीं क्यों नहीं चली जातीं, जो मुझे उपदेश सुना रही हो!

श्रीमती उत्तेजित हो बोलीं—मैं जाऊँ? अच्छा, लो, मैं जाती हूँ, पर सुबह मुँह दिखाने लायक न रहोगे। इसे समझ लेना!

और सचमुच श्रीमती चल पड़ीं। अब लाचार हो मुझे भी उस प्यारे गद्दे व लिहाफ का परम सुख परित्याग कर इस चाण्डाल जाड़े में नङ्गे बदन दौड़ना पड़ा। केवल गञ्जी पहने, हाथ में डण्डा लिये मैं शयनगृह से बाहर हुआ।

क्या कहूँ—उस समय उनकी जिद मुझे, कैसी बुरी मालूम हो रही थी? काश, "बीबी-बदलौअल" का रिवाज हमारे समाज में होता, तो मैं उनकी जैसी सुन्दरी और युवती स्त्री को बिना कुछ "फिरता" लिये ही फौरन से पेश्तर बदल देता, चाहे मुझे उनके बदले में चार बच्चों की माँ काली ही क्यों न मिलती? पर, अफसोस! हमारे समाज में यह रिवाज है ही नहीं!

'वह' दरवाजे तक पहुँच चुकी थीं। मैं लम्बे-लम्बे डग भरता उनके पास पहुँचा। वह मुझे लज्जित करती बोलीं—जरा देखो तो, सारी आबादी की आबादी भगी जा रही है। छोटे-छोटे बच्चे तक हाथों में छड़ी लिये "मारो, पकड़ो!" चिल्लाते दौड़े जा रहे हैं। क्या तुम इनसे भी नाजुक हो?

आदमियों की यह भीड़, यह कशमकश जो मैंने देखी, तो मेरे हृदय में वीरता और जोश का फव्वारा उमड़ आया। मैं भी तुरन्त दौड़ा गिरधारी दास के घर की ओर।

गिरधारी दास के घर के पास, उनके घर के भीतर कितनी भीड़

थी, यह मत पूछिए। हजारों-हजार आदमी, कच्छ चढ़ाये, हाथों में लाठी, डण्डा, भाला, बर्छी सम्भाले खड़े थे। सब की शकल घबराई हुई। चेहरे पर एक अजीब परेशानी छाई हुई।

अब मेरी समझ में आया, मामला कितना सङ्गीन था, और मेरा यहाँ नहीं आना मेरे हक़ में कितना बुरा था। मैंने मन ही मन अपनी श्रीमती की घोर बुद्धिमत्ता की घोर प्रशंसा की। देखा, लाला गिरधारी दास और उनके दोनों सुपुत्र, अङ्गद और हनुमान, घुटनों तक धोती चढ़ाये, सिर पर गमछा लपेटे, कन्धे पर लाठी रखे, अपने घर के चारों ओर 'मारो, धरो, पकड़ो' का बेतहाशा शोर मचाते, पागल-सा दौड़ लगा रहे हैं। हाँफते-हाँफते इनका बुरा हाल है। लोहार की भाथी की भाँति जोर-जोर से इनकी साँस चल रही है। चेहरा उड़ा हुआ। तबीयत घबराई हुई। ज़ुबान से बोली तक निकलनी मुश्किल! सिर्फ़ 'मारो, धरो!' कि एक रट उनकी ज़ुबान पर जैसे लिख गई हो! और वाक़ई, बात भी ऐसी ही थी। जिस बेचारे के घर डाकू घुसे हों, जिसका सर्वस्व माल जा रहा हो, वह ग़रीब पागल, विकल कैसे नहीं हो?

मुहल्ले के मुखिया बाबू रामनिहोरा सिंह, गिरधारी दास से घटना के विषय में पूछने लगे, तो गिरधारी दास ने बताया—करीब, यही आधा घण्टा हुआ, हमलोग खा-पीकर घर में सोये थे। लड़के भी अपने-अपने कमरे में सोये हुए थे कि एकाएक मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे मेरे भण्डार घर का बक्स कोई पटक-पटक कर तोड़ रहा है। मैंने पड़े ही पड़े हनुमान को पुकारा—हनुमान, भण्डार का बक्स क्यों खड़खड़ा रहा है? देख तो? मगर हनुमान खुद तो नहीं गया, उसने अपनी स्त्री को भेजा। वह लालटेन लिये भण्डार में गई, और वहाँ लालटेन पटक कर "बाप-बाप!!" चिल्लाती अपने घर में भागी। इतने में हनुमान आँगन में आकर—"डाकू-डाकू!" चिल्लाने लगा।

तब, मैं भी इस चिल्लाहट को सुनकर घबराया-सा आँगन में आया और पूछा—"क्या है रे? क्या है रे?" तबतक अपने घर से अंगद भी "चोर-चोर !!" चिल्लाता बौखलाया-सा आँगन में आया। मालूम हुआ भण्डार में डाकू घुसे हैं। मैंने तो साहब, दौड़कर भण्डार घर की साँकल चढ़ा दी। औरतें अपने-अपने कमरे में किवाड़ बन्द किये, डर से सटकी बैठी हैं। अब पता नहीं, डाकू घर में ही बन्द पड़े हैं या किवाड़ तोड़कर भाग गये! मेरे पिछवाड़े का थोड़ा हिस्सा टूटा हुआ है, मेरा ख्याल है, डाकू उसी राह मेरे घर में आये! और हाय-हाय!! मेरी जिन्दगी भर की कमाई, मेरी कुल जमा-पूँजी उसी बक्स में है। मैं तो लुट गया दादा! यह मुहल्ले के भेदिया का काम है, जिसने ऐसा सटीक पता दिया! हाय-हाय!! गिरधारी दास माथा पीट-पीटकर रोने लगे।

बाबू रामनिहोरा सिंह बोले—घबराओ नहीं लाला, मैं समझता हूँ, डाकू कहीं गये नहीं हैं। वे जरूर घर में बन्द हैं! यह तुमने बुद्धिमानी की, जो उस घर की जञ्जीर चढ़ा दी और तुरन्त हल्ला किया! इतनी जल्द डाकू भाग नहीं सकते।

लाला गिरधारी दास विकल भाव से बोले—आपके मुँह में भगवान बसें बाबू साहब! आपका कहना सच निकले, नहीं तो मुझे उजड़ा ही हुआ समझिये। हाय राम! अब मेरे बच्चे क्या खायेंगे, किसकी छाँह में रहेंगे? गिरधारी दास "डरकी बहुरिया" की नाईं नाक पोंछते हुए रोने लगे।

रामनिहोरा सिंह बोले—भगवान सब मङ्गल करेंगे लाला, घबराओ नहीं। हम अभी सब साले डाकुओं को पकड़ते हैं। फिर बाबू साहब ने लोगों से कहा—देखो सब लोग अपना-अपना हथियार सँभालो और लाला जी का घर घेर लो, ताकि सब जो डाकू बचे हों, वे भाग न पावें। और तुम लोगों में कोई २५—३० जवान, जिनके पास

भाला, बर्छा या गँड़ासा हो, मेरे साथ घर के भीतर वाले आँगन में चलो।

बाबू साहब के आज्ञानुसार कुछ लोग तो लाला जी का घर घेर कर खड़े हो गये और तीस चुने हुए जवान घर के भीतर हाथों में भाला, बर्छा और गँड़ासा लिये आँगन में आ खड़े हुए। देखा गया, जिस घर में डाकुओं के बन्द होने की बात लाला जी ने कही थी, उस घर की साँकल अभी ज्यों की त्यों चढ़ी है। लोगों को इतमीनान हुआ। लाला जी की भी जान में जान आई। अब विचार होने लगा, कौन घर में घुसकर डाकुओं का सामना कर उन्हें पकड़ा जाय। सब एक दूसरे का मुँह जिज्ञासा भरे भाव से ताकने लगे—देखें कौन माई का लाल मैदान में उतरता है!

बाबू रामनिहोरा सिंह भी खड़े-खड़े सोच रहे थे—खीर तो बड़ी मीठी थी, पर इसे खाना बड़ा टेढ़ा निकला। डाकुओं का सामना ठहरा। वे सब जान पर खेलने को तैयार रहते हैं। पता नहीं, उनके पास क्या-क्या और कैसे-कैसे हरबे-हथियार हैं। ताज्जुब नहीं कि उनके पास बन्दूकें हों, पिस्तौलें हों और किवाड़ खुलते ही वे धाँय-धाँय दागना ही शुरू कर दें! फिर तो, सारे बल्लम, बर्छे, भाले और गँड़ासे धरे रह जायँगे। इनसे कुछ काम नहीं निकलेगा उनके पिस्तौल, बन्दूकों के सामने! उलटे सबको मारते-मारते निकल जायँगे। परन्तु अब? अब तो जब आ गये, तो कुछ न कुछ करना ही होगा। वह लोगों को ललकारते हुए बोले—क्या देखते हो यारो! खोलो जंजीर! घुसो घर में! और पकड़ो सब सालों को!

किन्तु किसी के पैर नहीं उठे। सब के सब पत्थर की मूरत बने खड़े रहे। बाबू साहब ने फिर ललकारा दिया—क्यों यारो! क्या यहाँ सब माई के लाल हैं! क्या उन्हीं की माँ ने शेर पैदा किये हैं। तुम सब क्या गीदड़ ही गीदड़ हो? चलो! बढ़ो! ताकते क्या हो?

कण्ठीराम गोप सामने आये और बोले—इसमें शेर, बकरी की बात नहीं है, पिरथीनाथ! ऊ साले डाकू हैं। अपनी जान जब आदमी अपनी हथेली पर धर लेता है, तब चलता है किसी के घर डाका डालने व सेंध मारने। काम तनिक बिचार के होना चाहिये। उन सबके पास बनूक, पिस्तौल हो अउर किवार खोलते ही साले 'धाँय-धाँय' फैर करना शुरू कर दें! तब? तब सरकार सब की जान मुफुत में जायगी अउर ये भाग भी जायेंगे। हमारा विचार है दु आदमी थाने जावें अउर दारोगा के साथ दुई बनूक भी लिये आवें तो अलबत्ता किवार खोलने की हिम्मत भी की जाय।

कण्ठी गोप की बात निहोरा सिंह को खूब जँची, मानों उन्हीं की आत्मा बोल रही हो। वह बोले—हाँ, भाई कण्ठीराम बात तुमने लाख रुपये की कही। बिना कोई वैसे हथियार के किवाड़ खोलना खतरे से खाली नहीं है, इसे मैं भी सोच रहा था। अच्छा, इसमें से दो आदमी थाने जाओ, सब हाल दारोगा जी से कह के बन्दूक के साथ उन्हें लिवा लाओ। क्यों कण्ठी?

कण्ठी सहर्ष बोले—हाँ सरकार।

दो आदमी थाने दौड़े और आध घण्टे बाद, दारोगा जी बन्दूक और चार सिपाहियों के साथ घटनास्थल पर पधारे। सारी घटना गिरधारी दास के मुँह से सुनकर, दारोगा जी अपनी भरी पिस्तौल के घोड़े पर उँगली रखे उस घर की ओर बढ़े, जिस घर में डाकू बन्द थे।

दारोगा जी के पीछे उनके चार सिपाही, काँधों तले बन्दूक लगाये और सिपाहियों के पीछे बीसों आदमी भाला, बर्छा और गँड़ासा लिये चले। शोर मचा—'डाकू'—'बोलो बजरंगबली की जय! जैसे किसी किले पर चढ़ाई होने जा रही हो! दारोगा जी भी पूरे सावधान थे। बार-बार पीछे मुड़कर अपने सिपाहियों को देख लेते थे,

और—देखना, हुशियार रहने की नसीहत भी देते जाते थे। और सिपाही अपने पीछे वाले आदमियों को देख रहे थे। गोया, सब एक दूसरे की आशा और भरोसा पर पैर बढ़ा रहे थे।

अब दारोगा जी उस दरवाजे पर पहुँच गये और साँकल पर हाथ रखते बोले—देखिये, आप सभी लोग अपने-अपने हरबे-हथियार से दुरुस्त हो जाइये। अब हम जञ्जीर खोलते हैं। याद रखिये दरवाजा खुलते ही एक बार डाकू भाग निकलने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा देंगे, परन्तु आप लोग डरियेगा मत।

एकाएक 'झन्न' से जञ्जीर खुलने की आवाज हुई और सबकी छाती में जैसे धक से लगा। 'मारो, पकड़ो' का कोलाहल मच गया। पहले दारोगा जी घर में घुसे, फिर सिपाही। मगर डाकुओं का कहीं पता न चला। इधर कोने में बक्सों और अनाज की कुठिलों की आड़ में लोग डण्डे और लाठियाँ कोंच-कोंच कर डाकुओं का पता लगाने लगे कि सहसा कुठिले पर रखा एक टीन का बक्सा भड़भड़ाता धाँय से जमीन पर गिरा। लोगों की दृष्टि उस ओर गयी तो देखा, बाबू रामनिहोरा सिंह का पोरसे भर का पछाहीं काला कुत्ता 'टिपुआ' गों-गों करता इधर-उधर भागने की राह ढूँढ़ रहा है।

हत्तेरे की! अजी, टिपुआ था, टिपुआ! कहाँ का डाकू और कहाँ का चोर! राम-राम! इस जाड़े की रात में मुहल्ले भर के आदमी-बच्चे से लेकर बूढ़े तक, इस भय से परेशान हो रहे हैं! यह लाला जी के परिवार की अक्लमन्दी का नतीजा है, जिन्हें कुत्ता और डाकू का फर्क समझ में नहीं आता!

मुहल्ले के सब लोग वहीं एक स्वर से बोल उठे। दारोगा जी भी आँगन में खड़े-खड़े बकने लगे—क्यों साहब, इस घर में सब-के-सब पागल हो गये क्या? अफसोस! इस जाड़े की रात में इतने आदमियों के साथ मेरी भी नींद और आराम हराम किया।

लाला गिरधारी दास बोले—मैं क्या कहूँ हजूर, यह हनुमनवा ससुर इस घबराहट के साथ आँगन में आकर चिल्लाने लगा, कि मुझे कुछ सोचने-विचारने की फ़ुर्सत ही न रही। और मेरी अकल कुछ ऐसी मारी गयी कि मैं भी उसी के सुर में सुर मिलाकर चिल्ला पड़ा।

अङ्गद जी बोले—और बाबू जी, भइया का चिल्लाना सुनकर मेरी अकल भी ठिकाने न रही कि कुछ पूछ-ताछ करूँ। सोचा बिना डाकुओं के देखे यह क्यों चिल्लायेंगे।

इतने में जनाना घर की जञ्जीर बजी, मर्द जब अपनी निर्दोषिता का प्रमाण देकर पागलों की लिस्ट से अपना नाम कटाना चाहते हैं, तो स्त्रियाँ बेचारी क्यों उस लिस्ट में रहें! अङ्गद जी दौड़े हुए गये और क्षण भर में वापस आये। दारोगा जी बोले—क्यों जी, इस बार कौन से डाकू की खबर लाये?

अङ्गद बगलें झाँकते बोले—डाकू की खबर तो क्या होगी सरकार! भाभी कहती हैं कि मैंने भण्डार से लौटकर कुत्ता घुसने ही की बात कही थी, पर न जाने 'वे' (हनुमान) क्यों 'डाकू-डाकू' चिल्लाते बेतहाशा आँगन में भाग आये। भाभी उन्हें पकड़ कर आँगन में लाने ही वाली थीं कि बाबू जी भी अपने घर से निकलकर आँगन में भागे, फिर लोग जमा होने लगे। अब भाभी जायँ तो कैसे?

हनुमान जी बोले—झूठी है, शैतान! आप ही, बाप-माँ सिखाती भाभी और मुझे बेवकूफ बना रही है। सुनिये सरकार!

दारोगा जी अधीर हो बीच ही में बोल उठे—माफ़ कीजिये! एक तो आप लोगों ने मुफ्त में, इस जाड़े की रात में, कुत्ते जैसे एक मामूली जानवर के लिये नाहक हैरान किया। अब हम घण्टे भर खड़े-खड़े घर भर की लड़ाई सुनें? मेहरबानी करके अब ऐसा

फिजूल का गुलगपाड़ा मचाकर मुहल्ले वालों के साथ ही मुझे भी तङ्ग करने की अकिलमन्दी कभी मत कीजियेगा, वर्ना मैं आप सब लोगों को पकड़ कर पागलखाने भेज दूँगा, फिर वहीं डाकू पकड़ते रहियेगा। समझे ?

तीनों बाप-बेटे लज्जा से जमीन में गड़े जा रहे थे। लोग इनके परिवार की बुद्धिमत्ता की आलोचना-प्रत्यालोचना करते अपने-अपने घर चले। मैंने भी घर की राह ली। मेरा तो मारे गुस्से के यह हाल हो रहा था कि इन सारे खब्तुलहवासों का मुँह नोच लूँ। घर का घर पागल ! इन मूर्खराजों की बुद्धि में यह बात नहीं आयी कि डाकू हल्ला होते ही भाग खड़े होंगे या इतनी आसानी से घर में बन्द हो जायेंगे ?

घर में पैर रखते ही देवी जी ने पूछा—कहो क्या हुआ ? पकड़े गये डाकू ?

मैंने कहा—हाँ !

श्रीमती—कितने थे ?

मैं—एक !

श्रीमती जी चकित हो बोलीं—एक ? सिर्फ एक डाकू और इतना हो-हल्ला ?

मैंने कहा—और डाकू का हुलिया भी सुन लो—आबनूस का कुन्दा, चार पैर, डेढ़ बित्ते की जीभ और गों-गों, भौं-भौं का बोल !

श्रीमती बोलीं—अजी, मजाक छोड़ो, सच बताओ क्या बात थी ?

मैं—कुछ नहीं। रामनिहोरा सिंह का वह बड़का काला कुत्ता टिगुआ उनके भण्डार घर में घुसा था, और इन अक्ल के दुश्मनों ने मारे चिल्लाहट के आसमान सर पर उठा लिया था। बोलीं—झूठ-मूठ इस जाड़े में तुमने मुझे कितना सताया !

श्रीमती जी—अजी, मैं क्यों सताती ? मैंने तो समझा बेचारे के घर डाका पड़ रहा है। एक टोले में रहने के नाते मेरा धर्म है, उनकी सहायता करना। मैं क्या जानती थी कि उनका घर पूरा पागल-खाना है। डाकू और कुत्ते की पहचान उन्हें नहीं है।

मैं—तुम्हारी ही तरह समझ रखने वाली उनके घर की एक देवी जी के 'कृपा-काण्ड' का यह फल था कि सारा मुहल्ला ही नहीं; बेचारा थानेदार तक जाड़े की इस जालिम रात में, खुले आकाश के नीचे दो घण्टे तक अपनी 'कुण्डली का फल' देखता रहा।

—अच्छा रहने दो ! कहती हुई श्रीमती बेचारी भी लज्जित-सी हो रहीं।





यह दर्दवाली बीमारी भी, साहिब बड़ी विचित्र है। भगवान न करें किसी सज्जन को यह दईमारी दर्दवाली बीमारी हो और मजा यह कि कुछ भी हो, मसलन् आपको ठंड लगे या डंडा, आपके सर पर छत गिरे या हथड़ा, तलवार की चोट हो या गोली की मार, कहीं मामूली खराश पड़ जाये या डबल चीरा, मलेरिया हो या फाइलेरिया, टी० बी० हो या 'टेटनेस', सर्दी हो या गर्मी, सर फटे या टाँग टूटे, चाहे कोई रोग शोक हो, मगर उसके साथ यह हत्यारा दर्द जरूर रहेगा। इतना बड़ा विशाल व्यापक है यह दर्द!

दर्द की किस्में भी बहुत सी होती हैं। जैसे आपके यहाँ छः रस हैं, मधुर, अम्ल, कषाय, लवण, तिक्त, कटु; वैसे ही दर्द में भी कई रस हैं। मीठा-दर्द, जो मीठा होकर भी महा भयानक होता है। खास कर मीठा दर्द प्रेम-रोग में होता है। तिक्त रस, यह तिरावता और

कुनैन मिक्शचर से भी ज्यादा तीता होता है । और इस ज़ालिम रस का कटु अनुभव तब होता है, जब प्रेमिका की मिलन-वेला में ऐन मौके पर, उसका बाप-भाई, सखी-सहेली, अड़ोसी-पड़ोसी या कोई नामाकूल, हलुए में कंकड़ की तरह आ टपकता है, और मिलन में एक भारी व्याघात उपस्थित कर देता है । कटु-रस का असली अनुभव तब होता है, जब लाख समझाने-बुझाने, खुशामद और विनती करने पर भी प्रेयसी एक नहीं सुनती और पराये से प्रेम करने लगती है ! इसी प्रकार समयानुसार अन्यान्य रसों के भी अनुभव होते हैं । [illegible] रस-विवेचन करना नहीं चाहता, बल्कि चाहता हूँ अपनी आपदा सुनाना—अतः, रस की बात बालाए ताक रख कर, आप मेहरबान, मेरी मुसीबतों की करुण गाथा, बग़ौर व मेहरबान होकर सुनें ।

यह सच है, मैं न किसी रोग का शिकार हूँ, न मेरे सर पर डण्डा या ईंटा गिरा है, न मुझे गोली लगी है न तलवार, न सर्दी लगी है न बुखार, न टाँग टूटी है और न नाक ही घिसी है । फिर भी साहिब, मारे दर्द के मेरी जान मुसीबत में है । सीने में दर्द, कमर में दर्द, कलेजे में दर्द, सर में दर्द, टाँग में दर्द, सारे शरीर में दर्द । गोया, दर्द मुझपर कुछ ऐसा फिदा हुआ कि मुग्धा नायिका की नाईं मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर लोटने लगा । दर्द तो मेरे अङ्ग-अङ्ग को अपने गले लगाकर लुत्फ ले रहा था, और मेरी [illegible] थी । न दिन को चैन, न रात को नींद । आठों पहर बेचैन । बहरहाल मैंने मेरी सेहत के लिये कहाँ-कहाँ की [illegible] । [illegible] तान्त्रिक से प्रेतबाधा [illegible] । [illegible] साहब की दरगाह से गण्डे तावीज मँगवाये । मैंने "[illegible]" [illegible] । [illegible] लाक्षादि तेल की मालिश हुई, मगर वाह रे दर्द ! [illegible] हिमालय पर्वत की तरह, [illegible] । आखिर साहेब 'एक्सरे' भी हुआ, परन्तु 'एक्सरे' के परीक्षण को भी, दर्द [illegible]

क्यों और कैसे हुआ, का पता खाक न चला। अब घरवालों ने समझ लिया, यह शारीरिक कष्ट नहीं, दैवी दुःख है, इससे निस्तार नहीं होगा। इसे भोगना ही पड़ेगा।

मगर मैं इस दैवी दुःख के आसरे कब तक बैठा रहता? यहाँ दिन रात कभी चैन नसीब नहीं था। दिल पिस-पिसाकर चटनी हुआ जा रहा था और कलेजा जलकर कबाब! सुना, नकटी के पुलपर एक बड़े गहरे व तजुर्बेकार हकीम साहेब रहते हैं। जो ऐसे ही ऐड़े-बेड़े, किसी की समझ में नहीं आने वाले रोगों की दवा करने में बड़े उस्ताद हैं। जो मरीज बिल्कुल हताश व निराश हो जाए, वह श्री हकीम जी की शरण में जाए, तो फिर रोग क्षणों में रफू चक्कर! रोगों के निदान करने में वे इस जमाने के लुकमान हैं।

मैं हकीम जी की खिदमत में हाजिर हुआ। हकीम जी अपने दवाखाने में जाजिम पर मसनद लगाये, अमामा-पैजामा से दुरुस्त, जमकर बैठे हैं। उनकी दूध जैसी सफेद दाढ़ी उनके सारे सीने को ढके हुए नाभि के निकट तक लटक रही है। सामने मेज पर उर्दू की एक पुरानी, मैली व फटी पुस्तक खुली हुई उनका मुँह ताक रही है! मेज पर ही करीब १२।१३ छोटी बड़ी शीशियाँ धूल फाँकती पड़ी हैं, पीछे कई मर्तबान पड़े हैं। हुक्के की नली हाथ में है।

जाते ही मैंने हकीम जी को धनुषाकार हो एक लम्बी सलामी दी। हकीम जी जरा गम्भीर मुस्कान से मेरा सलाम कबूल फरमाते हुए बड़ी आजिजी व अख्लाक से बोले—"आइए-आइए, तशरीफ लाइए! कहाँ से आना हुआ? फरमाइये, तकलीफ की वजह!"

मैं अपना सारा दुखड़ा गा गया! क्या रोग है और इस कष्ट से मुक्ति-प्राप्ति के निमित्त मैं कहाँ कहाँ भटकता फिरा। कैसे-कैसे लोगों से इलाज करवाया। मगर किस प्रकार मैं चतुर्दिक से निराश हुआ; और

अब जिन्दगी से बेजार व बेकरार होकर आप हुजूर-आली की शरण में पहुँचा हूँ !

हकीम जी ने मुस्कुराते हुए अपना हाथ बढ़ाया और फरमाया—"अच्छा, जरा नब्ज तो देखूँ आपकी ! दर्द की वजह ! और अब आप बिल्कुल बेफिक्र हो जाएँ। अब आप ठीक जगह पर पहुँच गये हैं। रोग को काफूर ही हुआ समझिए। बन्दा ऐसे ही ऐसे मुश्किल व अगाध रोगों का इलाज करता है, और इन्शाल्ला चुटकियों में रोग को भगा मारता है !"

नब्ज टटोलने के बाद हकीम जी ने जुबान देखी, फिर पूछा—"अच्छा यह दर्द आपको कितने माह व दिन से है !"

मैंने कहा—"यही, कोई १५ दिन से है।"

हकीम—"दर्द हमेशा रहता है ?"

मैं :—"जी !"

हकीम :—"दर्द ज्यादा कहाँ मालूम होता है।"

मैं :—"पहलू में।"

हकीम :—"ओ ! अच्छा ! आपकी शादी हो चुकी है ?"

हकीम जी के इस प्रश्न से मैं चौंका घबराया। भला, दर्द व शादी से क्या सरोकार, क्या वास्ता ! क्या शादीवालों को दर्द नहीं होता !

मुझे बिल्कुल चुप देख हकीम साहिब बोले—"देखिए, पहले एक बात आप को बताना मैं भूल गया। चाहे कोई बात खुदा से भले छिपा लीजिए मगर मुझसे—हकीम से—बात छिपाकर आप खता खाएँगे। चुनांचे जो बात मैं पूछूँ, सच, हाँ, कहते जाइए। 'ना' कभी मत कहिएगा समझे ? हाँ, तो कहिए, आपकी शादी हो चुकी है ?"

हकीम के सारे प्रश्नों का उत्तर अब केवल 'हाँ' करके देना था, नहीं तो मरीज का नुकसान होगा, तब मैं 'ना' कैसे कहूँ ? मेरी शादी अभी नहीं हुई, फिर भी मैंने कहा—"हाँ !"

हकीम जी बहुत प्रसन्न हुए; बोले—"हाँ, इसी तरह सब कबूल करते जाइये। खैर, तो आपकी शादी हो चुकी है, मगर उस औरत की सूरतो-सीरत, चाल-चलन, रङ्ग-रूप, बोल-चाल आपको कतई पसन्द नहीं। बोलिए, जवाब दीजिए। चुप रहिएगा तो फिजूल मेरा वक्त नुकसान होगा।"

फिर मुझे 'हाँ' कहना ही पड़ा।

हकीम जी ने फिर पूछा—"अच्छा तो अब यह बताइये, आपके पड़ोस में, आपके मुहल्ले में या आपकी जान में ऐसी कोई औरत है, जिसकी सूरत वो शक्ल, रूप-रङ्ग, नाज-नखरा आपको बहुत मीठा और दिल लुभानेवाला मालूम होता है? वह कौन सी औरत है?"

हकीम के इस प्रश्न से मुझे घबराहट ही नहीं, कुछ क्रोध भी हो आया। यह हकीम है या शैतान। भला हमारे पड़ोस की सुन्दरी स्त्रियों से इसे क्या मतलब? यह उनका हुलिया क्यों पूछ रहा है? उन्हें जान कर यह क्या करेगा? दर्द के विषय में तो यह कुछ पूछता ही नहीं; खाली अण्ड-बण्ड बेमतलब की बात पूछ रहा है। दर्द का मीठी सूरत से क्या सम्बन्ध?

मुझे कुछ देर चुप देख कर हकीम थोड़ा झल्ला कर बोले—"देखिए साहेब, मैं पहले ही कह चुका हूँ, मेरे सवालों का जवाब जल्द-जल्द देते जाइए। चुप्पी मत साधिए। मेरा वक्त बहुत कीमती है। कहिए, बोलिए हाँ।"

मैंने फिर 'हाँ' कह दिया।

हकीम—"अच्छा रात में ख्वाब में आप उनकी शक्ल, उनका हँसना-मुस्कुराना, इठलाना, इतराना वगैरह-वगैरह सब देखते हैं और घबराकर जग पड़ते हैं। फिर दर्द शुरू हो जाता है। क्यों है न यही बात? खबरदार, झूठ कभी मत बोलियेगा, नहीं तो हम 'इलाज' नहीं करेंगे।"

सचमुच जैसे हकीम ने इस बार मेरे दिल में हाथ डाल दिया। बिल्कुल पते की बात कही। आज प्रायः एक मास से मैं प्रतिदिन 'चूड़ीवाली की' शक्ल स्वप्न में देखा करता हूँ, और दर्द शुरू हो जाता है। मगर मुझे क्या मालूम, अभागिन 'चूड़ीवाली' ही मेरे दर्द का कारण है! शुरू-शुरू में जब मैंने उसे देखा, अभागिन बेहद खतरनाक मुस्की छोड़ती हुई, मेरे घर में चूड़ी पहनाने घुस रही थी। उसी वक्त दिल में जैसे धक् से लगा, तब से यह धकधकाहट आज तक बन्द नहीं हुई और बाद में पीड़ा में बदल गई। वह 'चूड़ीवाली' मुझे याद भी हमेशा रहती है! मैंने मुक्त-हृदय से तथा गद्‌गद कण्ठ से कहा—"आपने जो फरमाया, हरफ-ब-हरफ सच है!

हकीम साहेब अब सँभल कर बैठते हुए बोले—"अब सुनिए मर्ज के सारे आसार, मैं बता रहा हूँ। आपका दिल हर वक्त एक अजीब सूनापन महसूस करता है, और 'भाँय-भाँय' किये रहता है।"

मैंने कहा :—"जी।"

हकीम :—"आप की तबीयत हमेशा 'री-री' करती रहती है!"

मैं :—"जी।"

हकीम—"सर हमेशा घूमता रहता है। सर में चक्कर, पाँवों में ग़दर, आँख, कान, नाक से आग की लपट, जी उदास, दिल बदहवास। मन निराश होना, किसी काम में तबीयत नहीं लगना, लम्बी-लम्बी साँसें फेंकना, नींद न आना, सीने या पहलू में दर्द होना, और अकेले बैठ कर रोना, इस मर्ज के आसार हैं।"

मैंने कहा—"जी, आपने जो फरमाया, सब सही है। मगर अभी एक दो बातों की शिकायत नहीं है, जैसे लम्बी साँसें फेंकना, अकेले में रोना।"

हकीम साहेब मुस्करा कर बोले—"अरे भाई, यह सब होगा, यह सब होगा। ज़रूर होगा, ज़रूर होगा। माना, ये आसार अभी नहीं

हैं मगर वक्त पर सब होकर ही रहेगा। मर्ज़ अभी आप पर अपना पूरा कब्ज़ा नहीं जमा पाया है।"

मैंने कहा—"जी, ठीक कहा आपने। सब लक्षण तो मिल गये, मगर मुझे हुआ है कौन-सा रोग? कृपाकर यह भी बता दीजिए।"

हकीम—"सब बताता हूँ, एक-एक बात बताता हूँ। मैं अधकचरा नहीं, पूरा हुनरमन्द और तजुर्बेकार तबीब हूँ। घबराओ नहीं, ज़रा ठहरो।"

फिर हकीम जी अपनी उसी पुरानी पुस्तक के पन्ने पलटने लगे, कभी नाक ऐंठते, कभी कान ऐंठते, कभी मुँह बिचकाते, कभी गम्भीर हो जाते, कभी खुश हो जाते, कभी पेशानी पर सलवटें उभर आतीं, कभी बित्ता भर मुँह फैला देते। गरज आध घण्टे तक हकीम जी अपनी हकीमी के ऐक्टिङ्ग-मोशन दिखाने के बाद स्थिर-दृष्टि से मुझे देखते बोले—"भैया, बड़े बुरे मर्ज़ के पाले पड़े हो तुम! तुम्हारे खुदा तुमपर खुश थे, जो हमारे पास आये, नहीं तो दूसरे हफ्ता लगते न लगते, अपना जनाज़ा तुम आप देख लेते। ऐसे मूजी मर्ज़ के शिकार हुए हो तुम!"

मैं अब एकदम घबरा गया; हे भगवान्! मुझे क्या हो गया!

हकीम बोले—"सुनो, तुम 'मर्ज़-इश्क' के निवाला हो गये हो।"

मैं व्याकुलतापूर्वक बोला—"यह 'मर्ज़-इश्क' क्या बला है हज़ूर?"

हकीम—"नहीं जानते मर्ज़-इश्क क्या बला है! हा-हा-हा! आज यह मर्ज़ तमाम दुनिया में अपना अखण्ड राज कायम कर चुका है! सौ में सौ इस मर्ज़ से मजबूर हैं। प्लेग व हैज़ा, तपेदिक और इन्फ्लुएंज़ा से भी ज्यादा इस मर्ज़ का दौर-दौरा है। जिस मूजी को यह रोग छू जाता है, उसका खुदा हाफ़िज़! जवानों की तो यह अपनी खास बीमारी है। ऐसा कोई जवान नहीं, जो इस मर्ज़ में मुब्तला न हो। और यह मर्ज़ आज का नहीं; बहुत पुराना, बहुत ही पुराना,

आदम व हौआ के जमाने का है। इसी मर्ज से मजबूर होकर आदम हौआ बहिश्त से जमीन पर फेंक दिये गये। तुम्हारे रामजी के वक्त की सूपनखा नाम की औरत की सही-सलामत नाक भी चली गई। मजनू और फरहाद जिन्दगी से हाथ धो बैठे। एडवर्ड अष्टम का ताज-तख्त गया। इस मर्ज के मरीजों की फेहरिस्त की किताब मेरे पास इतनी लम्बी-चौड़ी मोटी व भारी है कि वह चौदह ऊँट गाड़ियों में नहीं समा सकेगी! समझे!''

इस महा-चाण्डाल रोग से होनेवाले उपद्रव सुनकर मैं बहुत घबरा गया। बोला—''हजूर हकीम जी, जान चली जाय, राज चला जाय, घर गाँव और देश छूट जाए, सर टाँग व हाथ टूट जाए, लाख दर्जे अच्छा! मगर इस मर्ज से नाक जैसे शरीर के प्रधान अङ्ग का विध्वंस हो जाए, हे भगवान! हे भगवान! आदमी तीन कौड़ी का हो जाय। शरीर की सारी आबरू मिट्टी में मिल जाय! ओफ....हो....! वाकई, बेशक, यह महामूजी रोग है, हुजूर! बापरे! बैठे बिठाये किस बला में फँसा! भला ऐसे रोग का पता डाक्टरों को क्या खाक चलता।''

हकीम जी भिन्ना कर बोले—''अरे'' डाक्टर क्या जाने मर्ज की पहचान! वह कसाइयों की तरह चाकू लेकर भले ही किसी का पेट फाड़ दें, हाथ-पैर काट डालें, या सारे जिस्म में सुइयाँ भोंक भोंक कर बेचारे मरीज को तबाह, बर्बाद कर दें''''''यह और बात है, मगर मर्ज को क्या समझें, उसे तो समझेंगे हम, जो सारा इल्म घोटे बैठे हैं।''

हकीम कहते रहे—''अब इस इश्क के माने भी लो। 'इश्क के माने हैं' दिल का किसी पर आ जाना। मतलब, जब किसी की सूरत दिल में काँटे की भाँति गड़कर, सुई की तरह चुभ कर और नश्तर की मानिन्द गड़ी हो जाती है, दिल बेकाबू और मन बेचैन हो जाता

है, उसी का नाम 'इश्क' है। जब यह बीमारी अपने पूरे जोश पर उभड़ती है, तो आदमी, आदमी न रह कर पूरा घनचक्कर हो जाता है। वह अपना कपड़ा अपने आप फाड़ने लगता है, और अपने आप मुँह नोचने लगता है।"

हकीम अपनी धुन में कहते रहे—"यह तो हुई इश्क की तफसील। अब सुनो दिल जिस पर आता है, मन जिसके लिये रात-दिन अकुलाता और दिमाग चौबीस घण्टे खुराता है, और हर जगह हर वक्त जिसका ही चेहरा सिर्फ नजर आता है, उसे कहते हैं 'माशूक'! जो सताने में शैतान, तड़पाने में कातिल, ईमान का बेईमान, बेवफाई में बेहया, और पक्का नमकहराम होता है। जिसका दिल पत्थर का, जिस्म फौलाद का और नजर जल्लाद की होती है। जलाना जिसका पेशा, रुलाना जिसका मजहब, शरारत जिसकी सिफत और शोखी जिसकी कला है, उसको माशूक कहते हैं। यह जालिम माशूक अपनी नजरों के तीरों से तुम जैसे जवानों का दिल घायल कर, उसे दर्दीला बना देता है। अब समझे, कैसे जालिम मर्ज के पंजे में फँसे हो तुम।"

मैंने सविनय कहा—"जी, जी, जी—अब कृपा करके तुरन्त इलाज बताइए, नहीं तो इस चाण्डाल रोग से होनेवाली हानि सुन कर मैं पागल हो जाऊँगा।"

हकीम—"हाँ, इलाज सुनो! खुदा के फजल से जल्द सेहत पाओगे। अलसुबह उठकर दो सौ बैठक और एक सौ डण्ड लगाओ। दोपहर को सिर्फ साबूदाना खाओ और चिरायते का काढ़ा दिन रात में १५ बार पीओ जिससे सारा खून व हाड़-माँस तीता हो जाय। सारे जिस्म में मिठास की बू तक नहीं रहे। 'माशूक' शैतान तीती जगह में अपना बंगला बनाकर रह नहीं सकता। फौरन वह भाग खड़ा होगा।"

हाँ, परहेज भी सुन लो, गाना नहीं सुनना। रस व मुहब्बत की गुफ्तगू ख्वाब में भी नहीं करना। शौक-सिंगार से कतई परहेज रखना। जवान और हसीन औरत को देखना तो तुरन्त आँखें बन्द कर लेना। शराब, ताड़ी, गाँजा, अफीम, मतलब हर नशे से अपने को बचाना। बस, अभी इतना करो। खुदा ने चाहा तो जल्द चङ्गे हो जाओगे। अभी मर्ज की इब्तिदा है। और हाँ,....हमारी फीस दस रुपया!"

दस रुपये गाँठ के गँवा कर घर लौटा। मनों चिरायता औंटा कर पी गया, मगर दर्द क्यों दूर हो। अब तो 'चूड़ीवाली' मुझे और चूर करने लगी, क्योंकि मैं प्रेम का सारा पचड़ा समझ गया....! और समझदार की ही मौत है।

एक दिन मैं अपनी एक पड़ोसिन से टकरा गया, कारण उन्हें देखते ही मैंने झट अपनी आँखें मूँद ली थीं। पड़ोसिन ने एक हंगामा खड़ा कर दिया और सारे मुहल्ले में तत्काल मैं 'गुण्डा' घोषित कर दिया गया। घर बाहर काफ़ी फटकार पड़ी।

आफत का मारा एक दिन मैं सिनेमा गया। तमाशे में देखा—मेरी ही तरह एक मरीज, बेचारे प्रेम से पामाल हो पहलू में पीड़ा लिये, दर-दर दवा की तलाश में मारा फिरता है, मगर कहीं उसे मुनासिब दवा नसीब नहीं होती। अतः वह गम गलत करने के लिए शराब पीने लगता है, फिर तो मस्ती ही मस्ती है। कैसी पीड़ा और कैसी बेचैनी! प्याले में शराब की बोतलें बनादन उड़ेलता है, और दुनिया के सारे दर्दों को अँगूठा दिखाता सीन में झूमा करता है। बस यही दवा मेरे दिमाग में बैठ गई। यह इलाज फ़िल्म अपनी [illegible] था, आपको न मालूम हुआ तो आज सिनेमावालों से पता करें। इस अभागे इश्क़ को नष्ट करने के लिए शराब सचमुच रामबाण है!

और मैंने भी ढालना शुरू कर दिया। मगर मुझे क्या मालूम था

कि इस बदकिस्मत शराब का नशा इश्क से भी ज्यादा मूजी होता है। एकाएक मैं गरज उठा। घर के लोग घबराये, क्या हुआ इसे—आँखें लाल थीं। चेहरा चढ़ा हुआ, बोली लटपटाई हुई। मैं बोला—"आज मैं अपने दर्द की दवा पा गया, पा गया! खूब पीऊँगा—खूब छूट कर पीऊँगा।" मैं अपनी भाभी जी से उलझ पड़ा, माँ को मारने दौड़ा और भाई साहेब से लड़ गया। लगा चीखने-चिल्लाने, और मुहल्ले वालों को गालियाँ बकने। बाबू जी ने कहा—"यह ससुरा पागल हो गया है। इसे मुश्क दो और कल सबेरे इसके हाथ पैरों में लोहे की बेड़ी डाल दो, नहीं तो यह बड़ा उत्पात करेगा।"

पूरे चार माह हो गये, हाथ-पैरों में बेड़ी डलवाये। लाख कहता हूँ, अब मेरा दिमाग सही है। दर्द भी नहीं है। पर, घरवाले एक नहीं सुनते। उनका ख्याल है मैं पागल हो गया हूँ और उसका एकमात्र इलाज यही बेड़ी है। अब मैं भी महसूस करता हूँ, इश्क के मरीज के दर्द की दवा शराब नहीं, कड़ी-बेड़ी ही उत्तम औषधि है।



हम साहब, परमिट-कमेटी के सेक्रेटरी हैं। लेकिन आप क्या जानें कि हमारी जान किस सांसत में है, हमारी इज्जत किस आफत में है। हम वाकई आदमी हैं या सौदाई? हम कितने बड़े डकैत, बदमाश, बेहया और बेईमान हैं! हमारे खिलाफ लोगों का खासा बड़ा काफिला खड़ा हो सकता है। हर एक जुर्म आसानी से हमपर साबित किया जा सकता है। हम दुनिया के सारे पापों व अपराधों के आगार हैं। क्यों? इन सारी बातों का ब्यौरेवार तथा विस्तारपूर्वक वर्णन करने के बदले इतना ही निवेदन काफी होगा कि हम परमिट-कमेटी के महामन्त्री हैं, यानी दुनिया के सारे पापों के कर्त्ता। हमसे जनता ही नहीं, हमारी बीबी व हमारे बाल-बच्चे तक नाराज हैं। अड़ोसी-पड़ोसी तक मुँह बनाते हैं। पाप जैसा मेरा मुँह समझा जाता है। बेचारा बाप किसी

को खाए तब भी उसका मुँह लोगों को रक्त से रँगा ही दीखता है, न खाए तो भी दीखता है।

परन्तु जिनके घर संसार भर की ईमानदारी हाथ-पैर तोड़कर बैठी है, जो अपनी सत्यवादिता के सामने हरिश्चन्द्र व धर्मराज को भी तुच्छ समझे बैठे हैं, उधर से सत्य और ईमान के कैसे-कैसे खेल खेले जाते हैं, सुनकर इन्सान पागल हो सकता है। विगत २४ दिसम्बर की बात है। हम अपने दफ्तर में बैठे थे। तेल, चीनी, कपड़ा के आशिकों का काफिला काबिलेदीद था। 'आशिक' लफ्ज इसलिए कहा कि मैं जानता हूँ, जिनके घर शादी ब्याह अथवा श्राद्ध के अवसर पर, कभी छटाँक भर चीनी खर्च न हुई, सदा ब्राह्मणों को चूड़ा, दही, गुड़ खिलाया गया, बारातियों को भात व भूँजा फकाया गया, उन्हें भी अब चीनी की हाजत होने लगी, और सेर-आध सेर नहीं, पन्द्रह-बीस सेर! क्या तमाशा है, कैसी शरारत है! न दो तो गालियाँ सुनो, कुछ कम करके दो तब भी गालियाँ सुनो। और मजा यह कि जनता कहलानेवाले इन सज्जनों के खिलाफ कहीं कोई सुनवाई नहीं। इन्होंने जुर्म किया, ये सरासर झूठ बोलकर कपड़े ले गये; लेकिन इसे मानने को कोई तैयार नहीं। खैर, तो किसी कदर भीड़ को रेलता-ठेलता एक पच्चीस वर्ष का नौजवान दाढ़ी-मूँछ व माथा घुटाए, कमर में सफेद कपड़े का टुकड़ा लपेटे, एक हाथ में बाँस की एक हरी छड़ी, जिसमें लोहे की कील ठुकी थी, और दूसरे में पीतल का एक लोटा लिये, मेरे सामने आ खड़ा हुआ। सूरत उसकी निहायत उदास और शोकमग्न थी। अपने हाथों से एक दरख्वास्त मेरी ओर बढ़ाकर वह चुपचाप खड़ा हो गया और उसकी आँखों से झरने की तरह झरझर आँसू गिरने लगे। सच पूछिए, तो इस नौजवान की ऐसी दर्दीली आकृति देखकर मैं बड़ा द्रवित हुआ, और जब दरख्वास्त पढ़ी, तो मेरा रहा-सहा धीरज भी टूट गया। मैं हठात् चीख उठा—"अरे,

बाबू रामनिहोरासिंह मर गये ! कब ? वे तो मुझसे परसों शाम को चौक में मिले थे।"

वह नौजवान आँसू पोंछता हुआ बोला—"बस, परसों शहर से गये, खाना खाया, कहा—जाड़ा मालूम होता है। फिर घण्टे भर में जाने क्या हुआ कि सारा बदन सर्द, बोलती बन्द ! हाय-हाय ! हम तो कहीं के न रहे। न हमें कुछ बताया, न समझाया। हम क्या करें, कुछ समझ में नहीं आता।" वह और भी रोने लगा।

मैं उस नौजवान को ढाढ़स देता बोला—"सब्र करो भैया ! अपना वश क्या ? रोओ मत। मुझे खुद बड़ी पीड़ा हो रही है। तुम शायद न जानते होगे, बाबू निहोरासिंह मेरे बड़े अजीज दोस्तों में थे। तुम उनके कौन हो, लड़के या भाई ?"

वह बोला—"मैं उनका लड़का हूँ।"

फिर मैंने उसकी दरख्वास्त पर बिना अपनी कलम चलाए, ज्यों का त्यों उसे 'पास' कर दिया। चार जोड़ी धोतियाँ, चार जोड़ी जनानी साड़ियाँ, एक-एक थान मलमल और मारकीन, एक मन चीनी, एक टीन किरासन तेल, आध मन मैदा। वह चला गया। मगर रह-रहकर बाबू निहोरासिंह की स्मृति मुझे व्यथित करने लगी। कैसे दिलदार व हँसमुख आदमी थे। कितना [illegible] न मर्दाना वह शख्स था। दो-दो बार जेल गया था। [illegible] की बातें मेरा सीना कुरेदने लगीं। मैं [illegible] दफ़्तर से घर [illegible] आया। शाम हो गई थी। [illegible] चुकी थी, [illegible] समय मेरे एक मित्र आये और बोले—"चलिए, आज एक जगह [illegible] मजेदार तमाशा है—ऐसा कि आपने कभी देखा न होगा।"

मैंने पूछा—"क्या तमाशा है भाई, जिसे मैंने आज तक नहीं देखा ?"

वे बोले—"आज बाबू नौमीसिंह के यहाँ मृत-आत्माएँ बुलाई

जायँगी। इस विद्या के जानकर एक बङ्गाली सज्जन विशेष रूप से आमन्त्रित किए गए हैं।"

मुझे कुछ खास उत्सुकता इसे देखने के लिए हुई और मैं वहाँ पहुँच गया। वहाँ एक परम शान्त कमरे में नौमीसिंह बाबू सपरिवार तथा अपने अन्य मित्रों के साथ चुपचाप बैठे थे। वे बङ्गाली सज्जन कुछ दूर एक तिकोनी मेज लिये बैठे थे। आत्माएँ बुलाई जाने लगीं। नौमीसिंह बाबू के पिता-माता, बहिन सभी की आत्माएँ आईं। लगे हाथ हमने भी अपने मित्र निहोरासिंह को बुलाने की बात कह दी। जिस समय बाबू निहोरासिंह मेज पर पधारे, बड़ी खड़बड़ाहट हुई। मेज बहुत ज्यादा हिलने व खटखट करने लगी। बङ्गाली सज्जन ने एक चीख ली और सूचना दी—निहोरासिंह आ गये।

पूछा गया—"आप कहाँ हैं, कैसे हैं?"

जवाब मिला—"हम महा-प्रेतयोनि में हैं। बड़ा निकृष्ट कर्म करना पड़ रहा है। हम बड़े कष्ट में हैं।"

फिर बैठक खत्म हो गई। जिस समय हम घर लौटे, रात के दस बज रहे थे। कपड़े बदल, खाना खाने बैठे, तो पत्नी ने कहा—"अभी कोई आदमी बेचारा बड़ी बेचैनी से तुम्हें पुकारते-पुकारते थक-कर लौट गया।"

मैंने कहा—"मारो गोली! होगा कोई तेल-चीनी माँगनेवाला। इनके मारे तो भाई, नाकोंदम है। राह चलते चीनी दो। दस दोस्तों में बैठे रहो, तब तेल दो। अब घर भी ये शैतान शान्ति से न रहने देंगे।"

"तो इस काम में [illegible] क्यों नहीं दे देते? मिलना-जुलना खाक [illegible]"

"हाँ भला, मैं [illegible] कैसे दे दूँ? [illegible] का हुक्म [illegible] है?"

"तुम उनसे कहो—साहब, इस काम में [illegible] बहुत सुनता

पड़ती है। मुझ को बदनामी होती है। आप इस काम के लिए किसी और आदमी को रखिए।"

सहसा इसी समय दरवाजे पर फिर हाँक सुनाई पड़ी। पत्नी ने कहा—"यही आदमी है। देखो, फिर पुकारने आया।"

मैं ऊपर कोठे से ही बोला—"कौन है?"

जवाब मिला—"मैं रामनिहोरासिंह। तनिक नीचे आओ"

ऐं! रामनिहोरासिंह! रामनिहोरासिंह तो मर गया। तो क्या उसकी प्रेतात्मा मुझे पकड़ने आई है? जरूर यही बात होगी। अभी नौमी बाबू के यहाँ निहोरासिंह की आत्मा बोली भी थी कि वह महा प्रेतयोनि में है और बड़ा कष्ट भोग रहा है। अब मुझे काटो तो खून नहीं, सारा शरीर एक बार काँप उठा। आँख, नाक, कान से गर्म हवा निकलने लगी। मारे भय के काँपने लगा।

मेरी ऐसी भयानक भीत दशा देखकर पत्नी घबराई-सी मेरा मुँह देखती बोली—"क्या बात है? इतने डरे क्यों हो? कोई गुण्डा है क्या, जिसे तेल चीनी नहीं दिया।"

इस त्रस्तावस्था में भी पत्नी की बातों पर मुझे क्रोध आ गया। मैं झुँझलाया-सा बोला—"चुप भी रहो। तुम सदा तेल चीनी के ही सपने देखा करती हो? अरे, यह प्रेत है प्रेत!"

"प्रेत! दैया रे! यह प्रेत कहाँ से आ गया!" पत्नी के नेत्र व मुख दोनों बालिश्त भर फैल गये।

रामनिहोरासिंह की प्रेतात्मा फिर चिल्लाई—"अरे, क्या गूँगी साधे बैठे हो? अभी तो नौमी बाबू के घर से आ रहे हो। हम भी वहीं से आ रहे हैं। एक जरूरी बात करनी है तुमसे—सिर्फ दो मिनट।"

अब तो रहा-सहा सन्देह भी जाता रहा। यह रामनौमी बाबू के घर से आ रहा है। ठीक तो है। वहीं इसकी प्रेतात्मा बुलाई गई थी। मगर सवाल है कि यह बला टले कैसे! मैं नीचे जा नहीं

सकता। प्रेत समझकर पड़ोसी भी इसे पकड़ नहीं सकते। फिर इसे पकड़ ही कौन सकता है? अरे, यह तो फौरन छूमन्तर हो जायगा। और यदि मैं नीचे न भी जाऊँ, किवाड़ न भी खोलूँ, तो इससे क्या? वह हवा बनकर ऊपर चला आएगा, और हमारा गला दबोच देगा। तब फिर क्या करूँ?"

मुझे एकदम मौन तथा चिन्तित देखकर मेरी पत्नी बोलीं—"क्या सोचते हो? कह दो, चला जाय।"

उनकी इन बातों ने मेरा दिमाग और भी खराब कर दिया। मैं चिल्लाकर बोला—"तुम्हारे जैसा मेरा माथा खराब थोड़े है, जो कह दूँ कि चला जा। और, मेरे कहने पर क्या वह चला जायगा? वह आदमी थोड़े है, प्रेत है प्रेत! प्रेत कहने भर से नहीं जाते, जतन करने पर जाते हैं।"

"तो करो जतन! दरवाजे पर प्रेत बैठाए रक्खोगे?"

अब मैं अधीर हो फिर चिल्लाया—"मैंने बैठा रक्खा है? क्या पागलपन की बात कर रही हो?"

निहोरासिंह का प्रेत इस बार किवाड़ की साँकल पीटता बोला—"क्यों भई, इतना पुकारता हूँ, पर तुम सुनते ही नहीं! जरा नीचे आ जाओ न!"

मैंने ऊपर ही से कहा—"ऐ भाई रामनिहोरासिंह, हम तुम्हारे पैरों पड़ते हैं। हमने कोई अपराध किया हो, तो हमें माफ करो। भाई, तुम कृपा करके चले जाओ। हम बहुत डर रहे हैं।"

"क्यों, हमसे डर क्यों रहे हो? हमारे श्राद्ध का सब सामान तो तुम दे ही चुके हो, फिर डर काहे का?"

"सारी बातें जानकर भी खूब पूछ रहे हो, डर काहे का? अरे बाबा, भूत से भेंट करने में कौन नहीं डरेगा?"

"मैं भूत हूँ?" निहोरा ने गरजते हुए कहा।

"जो मर गया, वह भूत नहीं तो क्या है?" मैंने दबी वाणी में कहा।

"अरे भाई, हम मरे नहीं हैं। यही मरने की बात लेकर तो हम बड़े कष्ट में पड़ गये हैं। तुम नीचे आओ तो सारी बातें कहूँ। तुम मित्र हो, तुम मेरी सहायता न करोगे तो कौन करेगा?"

मैं घबराकर बोला—"भई, बाज आया ऐसी मित्रता से। ईश्वर के लिए मुझे बख्श दो! मुझे भी अपना साथी न बनाओ। दयाकर अभी कुछ रोज मुझे और जीने दो।"

"तो तुम्हें विश्वास है कि मैं मर गया हूँ और प्रेत बनकर तुम्हारे पास आया हूँ?"

"इसमें भी कोई शक है? तुम्हारा बेटा खुद श्राद्धकर्ता के वेश में हमारे पास आया। तुम्हारे श्राद्ध के लिए कपड़े ले गया। इसके सिवा आज हमने खुद तुम्हारी प्रेतात्मा को नौमी के घर बुलाया। वह आई और वही बात बोली, जो तुम बोल रहे हो यानी तुम बड़े कष्ट में हो।"

निहालसिंह के प्रेत ने भयानक रूप से अट्टहास किया, ऐसा कि हमारे सारे रोंगटे खड़े हो गये और मैं चीख उठा—"बाप रे, बाप! मुझे बचाओ!! मरा-मरा!!"

इसके बाद मैं बेहोश हो गया। होश आने पर देखा कि हमारे दरवाजे पर खासी भीड़ जुट गई है और बड़े जोरों का हल्ला हो रहा है। हमारी पत्नी बहुत व्यग्र-सी इधर-उधर दौड़ रही हैं। मैंने पूछा—"क्या बात है? वह गया?"

"नहीं, वह पकड़ लिया गया है। लोग आपको नीचे बुला रहे हैं।" पत्नी ने कहा।

अब मेरे नीचे उतरने में कोई खतरा नहीं लगता। आखिर काफी थे। डर काहे का! मैं नीचे उतरा तो जाने कहाँ मेरा साहस

निहोरासिंह पर पड़ी, और मैं फिर चिल्ला पड़ा—"इसे पकड़े रहो; पकड़े रहो, प्रेत है, प्रेत! फौरन खतरा कर देगा।"

पर लोग भी कैसे पागल थे! मेरी बातें सुनकर सबके-सब हँस पड़े। बोले—"साहब, आपकी मति खराब हो गई है क्या? यह प्रेत है? प्रेत ऐसा ही होता है?"

मैं तड़पकर बोला—"तो कैसा होता है? इसका खास बेटा इसके क्रिया-कर्म के लिए मुझसे कपड़ा ले गया। एक प्रेत बुलानेवाले ने इसकी आत्मा बुलाई, जहाँ एक मैं ही नहीं, बीसियों आदमी थे। फिर भी यह प्रेत नहीं है, और मेरी मति खो गई है? वाह! खूब कहते हैं आप लोग!"

लोग फिर हँसने लगे। बोले—"अरे, उसी मरने के फेर में तो पड़े हैं ये बेचारे! झूठमूठ इनका लड़का, वेष बनाकर इनके मरने की बात कहकर आपसे कपड़ा वगैरह 'पास' करा ले गया, और आज बेचते हुए पकड़ा भी गया। उसे थाने में दारोगा बैठाये हुए हैं। यह बेचारे उसी के बचाव के लिए आपके पास आये, तो आप 'प्रेत-प्रेत' चिल्लाने लगे। अव्वल तो प्रेत कोई चीज ही नहीं, दोयम अगर वह हो भी, तो इतने आदमियों के सामने कभी ठहर नहीं सकता वह।"

अब सारी बातें मेरी समझ में आ गयीं। मैं क्रोध से अधीर हो गया और बोला—"बताओ, बेईमान कौन है, हम या तुम? अरे, हम तो कभी-कभी तुम्हें कपड़ा ही नहीं देते हैं; पर तुम तो मेरी जान लेने पर तैयार हो जाते हो! राम-राम! आज मेरे मरने में क्या देर थी, क्या शक था? बस, तुम लोग चले जाओ। ऐ बाबू राम-निहोरासिंह, तुम भी जाओ बस! तुम्हें नमस्कार! तुम्हारे पितृगण पुत्र-पुत्रियों को हजारों नमस्कार और इस अभागे 'परमिट-कोटों' को

लाखों दण्डवत ! भाड़ में जाओ तुम, चूल्हे में जायँ तुम्हारे बेटे, और खन्दक में यह परिमिट कमेटी। बस आज से सब समाप्त।"

सुबह खाट से उठते ही शौच के भी पूर्व, मैंने सबसे पहला काम 'परमिट-कमेटी' से इस्तीफा देने का ही काम किया। अब साहब, हम बड़े चैन से हैं। न उलहने, न गिला, न गाली, सबसे मुक्त, सबसे फारिग। मगर आप इन धर्मराजों से पूछिये, ये हत्यारे महज दो-चार रुपये के लिए किस तरह हमारी जान लेने पर मुस्तैद थे ?



बहुत बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले

बेअदबी मुआफ !

आप सज्जनों से सिर्फ मुझे दो बातें, और महज मामूली-सी बातें पूछनी हैं ।

पहली बात तो यह है कि आप साहबान पर कोई परी, या चुड़ैल ही सही, आशिक हुई है या नहीं ?

दूसरी बात यह कि आप हजरात का दिल किसी परी या चुड़ैल, काली या गोरी, पर कभी मचला या मुश्किल हुआ है या नहीं ?

यदि हाँ; तो फिर कोई बात नहीं ! मैं आपको कलि का महान हरिश्चन्द्र अर्थात् परम सत्यवादी मानकर सादर शीश झुकाता हूँ । और यदि नहीं तो मैं आपको आज का महान राजनीतिज्ञ मानकर दूर से नमस्कार करता हूँ । धन्य हैं आप, जो इस खूबी के साथ ऐसी असत्यता का पालन करते हैं ।

आज हमारी उमर छत्तीस वर्ष, छः महीने, छः दिन, छः घण्टे की हो गई। और अब तक मेरे सारे मित्रों पर, बकौल उनके, कितनी कमला, बिमला, रमा, उमा कुर्बान हो चुकीं, नहीं कह सकता। किन्तु मुझे एक कानी, कलूटी, लँगड़ी, लूली तक ने तनिक हेरा भी नहीं। लिहाजा मैं बहुत घबरा उठा! क्या संसार में एक मैं ही सबसे बदसूरत या बदकिस्मत आदमी हूँ? क्या ब्रह्मा ने मुझे ठेकेदारों से बनवाया या अपने कारखाने की सारी बदसूरती या बदकिस्मती मुझपर ही उँडेल दी? और, अगर उन्होंने ऐसी बेवकूफी की भी तो मेरी किस मूर्खता या महापाप के कारण! अथवा लोग मेरी खूबसूरती की खूब को समझ नहीं पा रहे हैं? या मुझे अपने को सँवारने-सजाने ही नहीं आता? अभी रात के दो बजे हैं। मैं फौरन आइने के सामने गया। मुँह फाड़कर, मुँह सटाकर, मुँह सिकोड़कर, ज़रा मुस्काकर, ज़रा मुँह बिचकाकर देखा; यानी हर प्रकार से अपने मुँह की परीक्षा ली। मगर मुझे अपना मुँह, अपने किसी मित्र से बुरा, भद्दा या बदसूरत मालूम नहीं पड़ा। फिर आँखों को भी बाँकी-तिरछी, टेढ़ी-आड़ी करके देखा, मेरी दोनों आँखें कमल के फूल नहीं तो उल्लू की तरह बदसूरत भी नहीं हैं। काकुलें भी मेरी लम्बी-लम्बी हैं, मगर मैं उन्हें आजकल की तरह, औरतों के जैसा एकदम पीछे की ओर उलटता नहीं, बगल से माँग काढ़कर झाड़ता हूँ। तब फिर क्योंकर कोई आशिक मेरी नहीं होती?

हस्तरेखा देखनेवालों ने बताया कि संप्रति आप पर शनैश्चर की महादशा है। आप सुन्दर तो हद से ज़्यादा हैं, पर ज्यों कोई सुन्दरी मृगनयनी अपना नयन उठाकर आपको देखने लगती है, त्यों आपका मुँह उसे शनैश्चर-जैसा मोटा-भयावना दीख पड़ता है और वह बेचैन होकर अपना मृगनयन, आपके मुख की भयङ्करता तथा कुरूपता देखकर तत्काल हटा लेती है, और आप बेहाल हो उठते हैं।

यह बात मुझे जँची। जब सौदा सुन्दर है, तब वह पसन्द क्यों नहीं होगा? जरूर होगा। तब इसमें भाग्य का फेर है। भाग्य का फेर किसी जड़ी-बूटी, दवा दारू या इन्जेक्शन से भगाया नहीं जा सकता। यह दुआ यानी प्रार्थना करने से भगाया जा सकता है। ज्योतिषी ने मुझे बताया, मैं शनिवार को पीपल पर गुड़ का रस चढ़ाऊँ और कम-से-कम ५०१ बार उस पीपल के पेड़ का चक्कर लगाऊँ!

यही चक्करवाली बात, जरा नहीं, बहुत ज्यादा अटपटी थी। ५०१ बार चक्कर काटने के मानी है—तेली के बैल की तरह घर में ही पाँच कोस का चक्कर! मैंने पूछा—ज्योतिषीजी महाराज, यह ५०१ बार का फेरा कुछ कम भी हो सकता है? ज्योतिषी ने कहा—कम हो सकता है, परन्तु फेरे का चक्कर जितना कम होगा, प्रेमिका की आसक्ति में उतने मास की देरी होगी। अगर आप ५०१ बार चक्कर लगाने के बदले ४०१ ही फेरा लगायें तो आप पर किसी सुन्दरी के आसक्त होने में एक सौ मास की देर हो जायगी। एक सौ मास अर्थात् आठ वर्ष चार मास का विलम्ब।

आप ही समझें, जब किसी खेल या रेल की घण्टी की आध घण्टे की प्रतीक्षा, युग-सम मालूम होती है, तब प्रेम की ८ वर्ष चार मास की प्रतीक्षा कितना कल्प-कल्पान्तवत् प्रतीत होगी! इसलिए मैंने ५०१ बार का फेरा लगाना ही स्वीकार कर लिया।

लोग कहते हैं, ढूँढ़ने से भगवान मिलते हैं, आदमी क्यों नहीं मिलेगा? मैंने भगवान को कभी नहीं ढूँढ़ा, जो उनकी प्राप्ति या मिलन के सम्बन्ध में मेरा कोई खास अनुभव हो। मगर मैं अनुमानतः कह सकता हूँ कि ढूँढ़ने पर भगवान मिल सकते हैं, परन्तु प्रेमिका नहीं मिल सकती, नहीं मिल सकती! उस कमबख्त पीपल की परिक्रमा करते-करते मेरे पैर बेचारे 'त्राहि-त्राहि' चिल्ला उठे। मगर वाह रे शनैश्चर,

न तू भगा, न कोई सुन्दरी, मुझपर आसक्त तो क्या, मेरे मुँह पर तमाचा मारने तक को तैयार हुई !

चोट जब बर्दाश्त के बाहर हो जाती है, तब आदमी चीखने-चिल्लाने लगता है, जिससे दर्द की बात औरों पर भी जाहिर हो जाती है और लोग अपनी-अपनी समझ, बुद्धि और अनुभव के अनुसार औषधि भी बतलाने लगते हैं। चोट असह्य होती गई। पेट की बात मुँह पर आई और मुँह की बात अपने चन्द हितैषियों, शुभ-चिन्तकों के कानों में समाई। किसी ने कुछ बतलाया, किसी ने कुछ। पर मेरे पड़ोसी पं० पपीता पाँडे ने जो बतलाया, वह कुछ मेरे मन और मस्तिष्क, दोनों के अनुकूल लगा। पाँडेजी ने कहा—यह नकछेदिया की बहू मुझसे कितनी कन्नी काटती थी, मगर जब मैंने वशीकरण चलाया तब पालतू बिल्ली बन गई। देखते हो न, संसार में प्रेम के इसलिए सुन्दर-असुन्दर की कोई बात नहीं ! तुम देख लो, एक-से-एक सुन्दरी लंगड़ों के पीछे-पीछे लगी चलती है और एक-से-एक कामदेव, कुरूप और कुरूपा छछुन्दरियों की दुम पोंछते चलते हैं। यह सब उलटी बातें कौन करवाता है ? एकमात्र मन्त्र ! संसार में सबसे प्रचंड है मन्त्र ! मन्त्र से साँप-जैसा महाहिंसक क्रूर जन्तु, अपने बिल से बिलबिलाता चला आता है। कालिका और चण्डी खिंचाती आती हैं ! मन्त्र कोई साधारण वस्तु नहीं है !

मैंने कहा—मान गया पाँडेजी, आप गुरु मैं चेला ! अब दीजिए मुझे मन्त्र !

अपने गले से [illegible] लम्बा [illegible], नोंचो-नोंचकर निकालते हुए पाँडेजी बोले—मन्त्र [illegible], गुरु अपना [illegible], और मन-दो मन [illegible] में तुम्हें [illegible], और उसने उसे लाकर पटक दिया ! अरे, पहले गुरु की पूजा होगी, पाँच [illegible], पाँच पीली मुद्रा, मलमल, [illegible] या अशर्फी ! पाँच मन पवित्र चावल, पाँच सेर घी

पाँच मन आम की लकड़ी! सवा मन शाकल्य! सब मिला-जुलाकर ५०१) का खर्च चाहिये!

इस ५०१ से मेरा पिण्ड छूटता नजर नहीं आ रहा था। ५०१ फेरे से, यह ५०१) रु० कहीं आरामदेह और आनन्ददायक था, फिर भी मैंने पाँड़ेजी से प्रार्थना की—महाराज, इस ५०१) में कुछ कम-बेश हो सकता है या पूरे के-पूरे ५०१)? पाँड़ेजी बोले—कम-बेश सबमें होता है, मगर कम करने से मन्त्र-सिद्धि में विलम्ब होगा।

और, इधर एक पल का विलम्ब युग-युगांत-सा मालूम हो रहा था। ५०१) देने के पन्द्रह दिन बाद पाँड़ेजी आए। उनके हाथ में थोड़ी पीली सरसों, थोड़ा हलवा और कोई सुफेद बुकनी थी। उन्हें देखते ही मैं दौड़कर उनके चरणों से लिपट गया और उनके चरण-कमल के कंटकवत् केश ने मेरे सारे मुँह छेद डाले। पाँड़ेजी सगर्व बोले—मा कालिका की अपरम्पार दया या माया से सब कार्य सिद्ध हो गया। पूछो मत। हे दुर्गे, हे दुर्गे! इन पन्द्रह दिनों में जैसी परेशानी उठानी पड़ी! पन्द्रहों कर्म हो गया। प्रतिदिन दो बजे की निःशब्द कालरात्रि में मरघट जाकर योगिनी को जगाना पड़ा। बड़ी कठिनाई से योगिनी जगी। प्रेत-पिशाचों ने विघ्न डालने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखा। मगर मैं? मैं तो एक ही 'खनकुरुच' ठहरा। इनसे डरता थोड़े ही!

मैंने कहा—धन्य हैं आप महाराज! आप भू-सुर यानी पृथ्वी के देवता हैं। आपकी शक्ति से परे संसार की कोई वस्तु नहीं। यह सब क्या है?

पाँड़ेजी ने कहा—यह सब कार्यसिद्धि के लिए योगिनी का दिया हुआ प्रसाद है। मैं सब बताता हूँ, तुम सुनते जाओ। मैं हाथ जोड़कर, दाँत निपोरकर बोला—बहुत अच्छा महाराज! सुनाइए-सुनाइए!

पाँड़ेजी बोले—इसमें तीन तरह की सामग्रियाँ हैं। प्रथम तो यह हलवा है, इसे तुम उसे खिला दो, जिसे अपने पर आसक्त करना चाहते हो। बस, खाते ही वह शकुन्तला की तरह विकल, शीरीं की तरह पागल और 'हीर' की तरह विह्वल हो उठेगी। दूसरी चीज यह सुफ़ेद बुकनी है, इसे किसी प्रकार उसके घर के जल पात्र में डाल दो। इसे पीते ही वह एडवर्ड की तरह अपना सारा राजपाट, कुल-कुटुम्ब परित्याग कर तुम्हारे प्रेम में दीवानी हो जायगी। तीसरी चीज यह मंत्रित सरसों है, इसे उसके मुँह पर फेंक दो, जहाँ स्पर्श हुआ। कि वह जुलियेट की तरह तुम्हारे साथ कब्र तक में कूद पड़ेगी। लो, ये तीनों चीजें रखो, और जिस वस्तु को उचित समझो, उसका उपयोग करो।

हमारे पड़ोसी और अब गुरुदेव पं० पपीता पाँड़ेजी ५०१) रु० में मुझे दे गए चुटकी भर सुफ़ेद बुकनी, जो शायद पीसी हुई खली थी, आधा पाव चोकर का हलवा और आधी छटाँक पीली सरसों। बस इसीसे जग जीतना था। मगर सवाल यह था, कि आखिर इनका उपयोग किया जाय तो किसपर ? हम तो किसी पर आसक्त थे नहीं कि उसपर यह वशीकरण का गोला दागते। यहाँ तो दिखाना यह था कि जैसे हमारे मित्रों पर ही [illegible], [illegible] आसक्त हुईं वैसे ही हमपर भी कोई आप-ही-आप [illegible] 'कन्वासिंग' या मेल के आसक्त हो। मगर यह तो हुआ नहीं। हुआ उल्टा। अब मुझको ही मंत्र-बल से किसी को अपने पर आसक्त करना है। और जब ५०१) रु० दे दिया, तब इसे भी किसी तरह भुनाना है ! तात्पर्य, प्रेमिका ढूँढ़कर इस ५०१) रु० को वसूल करना है।

परन्तु फिर सवाल आया, ढूँढ़ने का ! लेकिन जब ५०१) रु० दिया है, तो ढूँढ़ना ही पड़ेगा। उन दिनों हमारे पड़ोस में एक बहुत बड़े आदमी के घर, लखनऊ से उनके रिश्ते की एक बड़ी सुन्दरी साली आई थी। हमारे देश—भारतवर्ष में लखनऊ तथा बनारस के प्रति

जनसाधारण का वही प्रेम, वही आकर्षण तथा मोह है, जो विदेश में पेरिस के लिए है। मिट्टी में भी यदि बनारस जोड़ दिया जाय, यानी 'बनारसी मिट्टी' कहा जाय, तो लोग आप-ही-आप उस ओर खिंच जायँगे, कि यह 'बनारसी मिट्टी' है ! क्या रूप, क्या सौन्दर्य, क्या मस्तानापन, क्या पाण्डित्य तथा क्या गान-वाद्य, सबमें बनारस 'बनारस' है, यानी बना हुआ रस है, आपको रस बनाना नहीं है—बनारस खुद बना रस है। कहते हैं—

खाक भी जिस जमीं का पारस है !
वह शहर बनारस है !!

यही हाल नवाबों की नाजनी नगरी लखनऊ की है ! लखनऊ का नाम आया नहीं कि वहाँ की नाजो-नफासत, मुलायमियत या मलाहियत, नखरे तथा चोंचले सजीव होकर आँखों-तले नाच उठे ! दिलों में एक मीठी मुस्कुराहट तथा गुदगुदी उठ आई और मुँह से अनायास निकल पड़ा—

हम फिदाए लखनऊ !

ख्याल फरमाइए, जिस लखनऊ के नाममात्र में इतना सम्मोहन, इतना पुलक और ऐसा आकर्षण है, उस लखनऊ की जीती-जागती तस्वीर, लखनऊ की एक विशेषता नफीस चीज—नारी को देखकर, उसे प्रेयसी बनाने के लिए यदि हृदय 'हाय-हाय' कर उठे, तो क्या बुरा या क्या अचम्भा ! दिल के बन्द-बन्द टूटकर तड़प उठें तो क्या कुसूर ! अच्छी चीज किसको भी नहीं सुहाती ! और अच्छी चीज को पाने के लिए, जिसने जीवन में कोई कोशिश नहीं की, वह इस संसार में बेकार पैदा हुआ !

हाँ, मैं बेकार या [illegible] की किस्म का आदमी नहीं हूँ ! लखनऊ की वह नाजो-चोंचले की रानी, एक रोज मुझे [illegible] रास्ते में मिल गई। मैंने बेहद अदब से उसे प्रणाम किया। वह वनिता

मुस्कुराती हुई बोली — माफ कीजिएगा, हुजूर को शायद मैं भूल रही हूँ। मैंने भी लखनौवे अदब-तहजीब से कहा—खाकसार का गरीब-खाना, हुजूर जहाँ अपना तशरीफ मुबारक लाई हैं, वहीं नजदीक ही है। ताबेदार को झण्डाप्रसाद लाल कहते हैं। वह उसी लखनौवे मुस्कराहट के साथ बोली—आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई! और आप हमारे बहनोई साहब के पड़ोसी हैं, इसे जानकर और भी खुशी हुई! शुक्रिया! तसलीम!

मछली-जैसी मामूली जीव को फँसाने के लिए जब रोज-रोज घाट-घिसाई करना पड़ता है, इन्तजार करना होता है, तब आदमी जैसे 'गुण-ज्ञान-निधान' जीव को फँसाने के लिए तो कई दिन लग जायँगे। मगर, वाह रे मन्त्र! गुरुदेव पपीता पौंड़े का हलवा! अफ्फोह! कमाल है! श्री ठाकुरजी महाराज का प्रसाद कहकर एक दिन मैंने उसे वह मंत्रित हलवा खिलाया और सुफेद बुकनी घोलकर पानी भी पिला दिया। मालकम वशीकरण का 'डबल डोज' दिया। अब इसमें शक-सुबहा की [illegible] भी गुंजाइश नहीं रही कि वह [illegible] आसक्त नहीं हुई होगी।

और जब वह आसक्त हो गई, तो फिर उससे पर्दा रखना बेकार। एक रोज मैंने फरियाद की—बेअदबी और खता मुआफ! हुजूर के नजरे-इनायत के बगैर, ताबेदार का दिल-जिगर कबाबे-सींक की तरह जलकर, गेहूँ की तरह पिसकर, आँधी की धूल की तरह उड़ रहा है। मालूम होता है, दिल में भड़भूजा भरसाँय झोंक रहा है और अपने कलछुल से मेरे तन-मन को खूब भून रहा है। न दिन का चैन, न रात को नींद! जान पड़ता है, जिन्दगी [illegible] हुई जाती, भादों की रौंदी हुई घास, कुत्तों की तरह निराश और पागलों की तरह बदहवासी हो गई है।

वह बड़े जोर से लखनौवी नाजो-अदा से अँगड़ाइयाँ लेती, हँसकर,

बोली—"जनाबमन, जो हाल 'ऐन' का है, वही हाल 'गैन' का भी है! मुझी को कौन इत्मिनानो-करार है आपके बगैर! मगर सवाल है, जब तखलिया (एकान्त) हो तब न मुहब्बत के लुत्फ हासिल हों! आप हमारे बहनोई साहब के घर चुपके से तशरीफ ला सकते हैं?"

मैं बड़े जोश में बोला—"हुजूर की कदमबोसी के लिए मैं बियाबाँ में जा सकता हूँ। घर तो भला घर ही है।"

बहुत सज-सँवरकर रात में मैं चुपके से उनके घर गया। बड़ी खातिर की बेचारी ने। इतने में मालूम हुआ, कोई जोर-जोर से किवाड़ पीट-पीटकर खोलने को कह रहा है। क्या बताऊँ?

प्रेमिकाओं के घर प्रेमियों के पकड़े जाने की बात तो इतना सुन चुका हूँ जितने दिन की हमारी उमर भी नहीं हुई, पर प्रेमिकाओं के घर प्रेमियों के पकड़े जाने पर क्या दशा होती है, इसका तीता अनुभव आज हुआ। हमारी हालत क्या हो रही थी, समझ में नहीं आता। आप सज्जनों को कैसे समझाऊँ! लकवा मुझे कभी नहीं लगा, पर सुना है, लकवा लगने पर सारा शरीर सुन्न, गतिहीन तथा निष्क्रिय हो जाता है। हाथ नहीं उठते। पैर नहीं हिलते। मुँह से 'बो-बो' का बोल केवल निकलता है। आँखें फैल जाती हैं और दिमाग ऐसा 'फेल' हो जाता है कि अपना और अपने माँ-बाप का नाम तक याद नहीं पड़ता। हिरण्यकशिपु की तरह दिन-रात, भीतर-बाहर, शरीर आसमान पर है या जमीन पर, कुछ भी नहीं मालूम पड़ता। बैंत का सुआ-थाला 'हिरनी' में जैसे [illegible] की भाँति, मालूम होता था, अब बैंत पड़ी कि तब बैंत पड़ी! और भी कैसा [illegible] मालूम होता था, मुझे कहना नहीं आता है [illegible]।

मगर वह घबराई नहीं, बड़ी हौसिला थी, नहीं तो जाने क्या होता! वह उस समय भी मुस्काती हुई बोली—आप घबराएँ नहीं!

में सब इन्तजाम कर देती हूँ। इश्क में थोड़ी तकलीफ तथा परेशानी उठानी ही पड़ती है।

मेरी तो बोलती बन्द थी। जीभ बेचारी तालुओं में यों चिपकी थी कि वैसा 'जोंक' और 'अठई' भी क्या चिपकेगी! कानों में झन-झन का स्वर यों गूँज रहा था, मानों हजारों 'झाल' बज रहे हों! माघ की बारह बजे की रात में आँख-नाक से जेठ की दुपहरी की तरह 'लू' निकल रही थी। मारे भय के चेहरा स्याह-सा हो रहा था। प्रतिक्षण यह भय, कि पकड़े गये, पीटे गये और बेइज्जत हुए! दिल पुरवैये के झोंके में पड़े केले के पत्ते की तरह काँप रहा था। अब समझ में आया कि जिस चीज में जितना आनन्द है उसमें उससे कहीं ज्यादा कष्ट और पीड़ा भी है। खास कर 'इश्क' के रोजगार में! बाप रे, बधिया बैठ जाती है! इश्क में खुले हुए दिल की दूकान में केवल नुकसान-ही-नुकसान है, नफा नाममात्र तो क्या, एकदम नहीं है।

आपने रामलीला जरूर देखी होगी। रामलीला में अङ्गद-हनुमान या रावण-कुम्भकर्ण बननेवालों का मुँह रँगकर जैसा खूबसूरत बना दिया जाता है, हमारा मुँह भी उसने रँगकर वैसा ही बना दिया और कोट-कमीज उतरवाकर गर्दन से लेकर पिंडली तक, एक पीले रङ्ग का कुर्ता, जैसा साधु लोग पहनते हैं—पहना दिया। अच्छी-खासी सूरत भूतों की मानिन्द हो गई।

उधर किवाड़ के पल्लों पर घूसों की वर्षा हो रही थी। किवाड़ खोलने के लिए हाँक-पर-हाँक लगाई जा रही थी, मानों नाग [illegible] के लिए 'हँकाया' जा रहा हो! और इधर मुझे [illegible] में [illegible] उसने किवाड़ खोल दिया। उस कमरे में [illegible] [illegible], [illegible] पहन, उसके [illegible] मैं दो गिलास [illegible] हुए [illegible]। लैम्प लेकर

दिया और बोले—तुम जगी हो! बहुत ठीक है। इसे ही देखने हमलोग चले आए। अभी पड़ोस में एक लफङ्गा घुसा था।

फिर वे चौंककर बोले—अरे, उस कोने में कैसा तमाशा खड़ा कर रखा है? वह थोड़ा मुस्काकर बोली—हाँ, उसे तमाशा भी आप कह सकते हैं। वह लहुरावीर का पुतला है।

उसके बहनोई ने पूछा—तो हुजूरेवाला ने अपने कमरे में लहुरावीर साहब के इस पुतले को खड़ा कर रखा है? क्या दिलबस्तगी के लिए?

वह बोली—अजी साहब, पुतले से दिलबस्तगी तो क्या? मगर हाँ, दिलबस्तगी ही समझिए। यों ही ला रखा है! इसके सिफात (गुण) बड़े अजीबोगरीब हैं।

बहनोई—क्या? इसमें क्या सिफत है?

वह—यह कान ऐंठने पर फौरन अपना हाथ दनादन चलाने लगेगा। नाक मलने पर तुरन्त गाना शुरू कर देगा और पेट सहलाने पर खूब हँसेगा।

बहनोई—भई वाह! बेशक! तब तो वाकई आपने बड़े कमाल का पुतला ला रखा है।

फिर उसके बहनोई अपने मित्रों से बोले—क्यों साहब, आप लोग इस पुतले का कौन-सा गुण देखना चाहते हैं? हाथ भाँजना, गाना सुनना या हँसना?

किसी मरदूद ने कहा—गाना सुनना, किसी ने कहा—हँसना और किसी ने कहा—हाथ भाँजना! गोया मुझे अपनी सब करामातें दिखानी पड़ेंगी। दौड़कर एक शैतान ने मेरा कान पकड़कर इस जोर से ऐंठा कि जीवन में ऐसी कनेठी कभी नहीं खाई होगी। बोला—यदि हाथ नहीं भाँजता है तो यह मरदूद फिर कान ऐंठेगा, और इस बार और जोर से ऐंठेगा।

मैं दर्राटे से हाथ भाँजने लगा। और, सब 'हा, हा, हा' कर हँसने लगे। फिर पाँच मिनट के बाद एक दूसरे कमबख़्त ने मेरी नाक इस जोर से मल दी कि मेरी आँखों से आँसू निकल आए। जी में आया, हरामजादे का मुँह नोंच लूँ। पर मजबूरी थी; उस वक्त मैं पुतला था, मुहल्ले का रईस बाबू झगड़ाप्रसाद लाल नहीं। मरता क्या नहीं करता! गला दबाकर, आवाज बदलकर गाने लगा—"मुहब्बत में जरा भी न पाँ डगमगाए!"

इन मूजियों ने मेरा गाना सुनकर खूब ठहाके लगाये। 'वाह-वाह' के नारे खूब बुलन्द किए। अब हँसनेवाला गुन दिखलाना बाकी था। सब-के-सब मुझपर टूट पड़े और मेरे पेट में उँगलियाँ कोंच-कोंचकर लगे बड़ी बेरहमी से मुझे गुदगुदाने। अब हँसने के बदले मैं लगा—'बाप-बाप, मरा-मरा!' चिल्लाने तो उसके बहनोई बोले—क्यों भई, साली साहिबा! यह तो बात उलटी हो गई। पुतला हँसने के बदले 'बाप-बाप' चिल्लाता है।

उनके एक मित्र ने कहा—मालूम होता है, पुतले का दिमाग खराब हो गया है। इसके दिमाग पर दस घड़ा पानी डालो!

हे भगवान! जाड़े की गहरी रात में कपार पर दो-चार लोटा भी नहीं, दस घड़ा पानी! भागो डबल निमोनिया! जिसका नतीजा मैं श्री राम-राम सत्त!....

घड़े का पानी देखते ही मैं चिल्ला उठा—अरे, मुझे मारो मत! मारो मत! मैं पुतला नहीं, झगड़ाप्रसाद हूँ। प्रेम की आँधी के झकोरे में इनके बुलाने से मैं चला आया! ओ गॉड! बहुत धोखा खाया। प्रीत लगाकर फाँसी देने अथवा घात करनेवाले, काशीवासी ही कहे जाते थे, मगर लखनऊ फाँसी देने में काशी से भी फाँद गया!

"अरे, तुम झगड़ालाल! वाह गुरु, वाह! बड़े छुपे रुस्तम निकले!"—सब एक साथ चीख उठे, मैं तो कुछ पहचाने ही नहीं

हों ! मैंने कहा—बनो मत ! सब सधी-सधाई बात थी ! यह सब तुम लोगों का षड्यन्त्र था।

एक ने कहा—अरे, प्रेम में तो इससे भी बुरी गत होती है ! तुम तो सस्ते ही छूट गये। जल्द भागो यहाँ से, नहीं तो और जो कुछ बाकी होगा, सब पूरा हो जायगा !

उसी वेश-भूषा में मैं बाहर निकला तो सबेरा हो गया था। हमारे पीछे शहर के शरारती लड़कों का काफिला 'हो-हो—बहुरूपिया—बहुरूपिया !' के नारे से आसमान फाड़ने लग गया। जितना ही इन्हें डाँटता-डपटता, उतना ही ज्यादा ये शैतान लौंडे शोर मचाते। अब शहर का जो भी स्त्री-पुरुष मुझे देखता, तालियाँ पीटकर हँस पड़ता। हमारी बौखलाहट दही में चीनी का काम करने लगी। अब लड़के मुझपर धूल झोंकने लगे। उन्होंने मुझे एकदम पागल ही समझ लिया। तभी चाय की एक दूकान पर रेडियो खुला। सुना, कोई जोर-जोर से गा रहा था—

निकलना ख़ुल्द से आदम का सुनते आए थे, लेकिन !
बहुत बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले !!



जिनके घर में बाप-दादे की काफी कमाई होती है और घर में दिल उलझाने वाली, या मन-मतङ्ग को तेज अंकुश देनेवाली लुगाई नहीं होती; जिन्हें संसार में कोई काम नहीं रहता, बस, आठों याम केवल आराम ही आराम रहता है, ऐसे लोग प्रायः [illegible], मतलब प्रेमी हो जाते हैं। उनके दिलों में प्रेम का खूँटा, अङ्गद के पैर से भी ज्यादा मजबूत गड़ जाता है, जिसे भीम और हनुमान भी अपनी सारी शक्ति लगाकर नहीं उखाड़ सकते।

और यह अच्छी बात है। किसी चीज का [illegible] और गड़ना बहुत हल्कापन है, बहुत लज्जा की बात है। और प्रेम होना कोई पाप भी नहीं है। संसार में बड़े-बड़े प्रेमी महापुरुष हो गये हैं, जिनका गुणगान भगवान से ज्यादा नहीं, तो कम भी नहीं होता। उनका नाम बताना या गिनाना उसी तरह व्यर्थ है, जिस तरह अपने

देश से जात, और जात के नाम पर जमात, और उस जमात के कारण आपस में जूतालात बन्द कराने का प्रयत्न व्यर्थ है।

मुझे भारी प्रसन्नता है कि हमारे नगर में तो क्या, हमारे पड़ोस में ही एक नहीं, तीन-तीन दिलदार और गजब के दिलदार बसते हैं। उन महान वन्दनीय महा सज्जनों के सायं स्मरणीय, दोपहर में भजनीय और प्रातः पठनीय शुभनाम, पं० पपीता पाँडे, मुँशी मिरचाई लाल और बाबू पड़ाका सिंह है। तीनों सज्जन अद्वितीय सुन्दर। पाँडे जी का शरीर, डा० एस० के० बर्म्मन के "साइनबोर्ड" वाली तस्वीर—"दवाखाने के बाद" जैसा पहलवानी कद, मुँशीजी का "दवाखाने से पहले" जैसा मजनू मार्का और बाबू साहेब का ऊँट छाप। पाँड़ेजी के मुँह पर एक-एक मुट्ठा मूँछ पंत जी की तरह, मुँशीजी का मुँह बिल्कुल सफाचट श्री बाबू की भाँति और बाबू पड़ाका सिंह की मूँछ निहायत पतली सूई की तरह सिनेमा ब्राण्ड—!

संसारी काम से तीनों बेकाम, पर दिलदारी काम में तीनों पहलवान, पाँच बजे शाम को जब ये तीनों सज्जन सोकर उठते हैं, साबुन से खूब मलमल कर मुँह का मलबा साफ करते हैं। फिर सर की झाड़ी को कंघी की कुदारी से खूब खोदते हैं। सर के केश में [illegible] गहरा [illegible], [illegible] नाला। कोई आगे [illegible] [illegible] शौकीनों की तरह [illegible] कर उसको [illegible] नहीं देता [illegible] फिर ये तीनों दिलदार [illegible] देते हैं बाजार।

बाजार में संसारी लोग [illegible] [illegible] है, मुर्दा-[illegible] बेराहत हैं! मगर—दिलदार लोग कुछ [illegible] नहीं, बल्कि ये दिलदार लोग दिल बेगाने हैं, और बिल्कुल [illegible]! [illegible] श्रीकृष्णचन्द्र की दशा न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]—यदि कोई तरुण, [illegible] इन दिलदारों की नजरों के [illegible] पर [illegible] बैठी, अच्छी ऊँची, तो हमारे ये दिलदार वहीं [illegible] से सिनेमा का

वह बहु-प्रचारित गीत रासभ-स्वर में चीख उठते हैं—"गोरी बन ठन के,....चलि आना हमारे अँगना—?"

भगवान भला करे उस महान् कवि का जिसने हमारे देश की संस्कृति, संस्कार, परम्परा एवम् साहित्य के ज्वलंत प्रतीक इस महान गीत की रचना कर, देश की डूबती नैया को बाल-बाल बचा लिया। और धन्य हैं, हमारे देश की मरती कला को "मृत-संजीवनी सुरा" पिलाकर जिलाने वाले सिनेमावाले, जिन्होंने इस परम पावन गीत से शहर का कोना-कोना, डगर का चप्पा-चप्पा गुंजायमान कर दिया।

नीले रङ्ग की बूटेदार साड़ी में सत्रह साल की अपनी लचकदार कमनीय काया छिपाये, अपनी कमानदार भौंहों की तेज तलवार चलाती, अपनी शरबती आँखों के मीठे रस से इन दिलदारों को शराबोर करती, और होठों से बिजली गिराती, एक तरुणी, इन दिलदारों की बगल से आसमानी तीर की तरह सर्र से निकल गई।

दिलदार तो फिर दिलदार ही थे, क्यों चूकते! चौकड़ी भरने लगे। अन्ततः वह रूप की रानी एक चायवाले की दूकान की कुर्सी पर फुदक के जा बैठी। तीनों दिलदार भी आ बैठे और इधर-उधर नजर बचा कर उस रूपसी से प्रेमयोग की प्रथम क्रिया, नजर मिलन्त करने लगे।

वह सुन्दरी इन दिलदारों के दिल को समझ गई थी कि ये दिलावर मेरे हाथ बिना दिल बेचे नहीं मानेंगे, तभी इतनी उदारता से [illegible] आँखों से निमन्त्रण [illegible] है। [illegible] में ज़रा-ज़रा मुस्कराहट [illegible] जाती थी और कुछ [illegible] की [illegible] जाती थी। कदाचित् वह किसी के आगमन के इन्तजार में थी।

ये तीनों दिलदार भी चाय [illegible], दीदार का लुत्फ़ लेने लगे। मुंशीजी उर्दू के थे, उन्होंने बड़े मौके का एक शेर पढ़ा—

"मुद्दत के बाद पाई है, हमने शबे-विसाल।
दो चार सौ बरस तो इलाही सहर न हो।"

पाँड़ेजी और बाबू साहब ने अपनी छाती पर धड़ाधड़ दुहत्थड़ मार कर दाद दी—"आय-हाय क्या कहना! कमाल है, मुँशी कमाल! क़लम तोड़ दिया।"

इस तरह इन दो दिलदारों को पूरी बेरहमी से, अपने-अपने सीने पर धड़ाधड़ घूँसे मारते चाटवाले ने देखा तो, मारे घबराहट और अचम्भे से उसकी आँखें छै-छै इञ्च फैल गईं—"हे भगवान, मेरी दूकान पर ये कौन से शैतान आ गये—गुण्डे, या पागल—" उसने इन दिलदारों को अपनी घबड़ाई आँखों से देखते हुए कहा—"आप लोग और क्या लेंगे, जल्दी कहिए! नहीं तो आइये, जल पीजिए, और जगह खाली कीजिए! यह दूकान है धर्मशाला नहीं।"

पाँड़े अपनी छाती तानकर बोले—"अरे यार, तुम घबड़ा क्यों गये? देखते नहीं यह भीमसेनी देह! इतने में तो फ़ौरन भी नहीं होगा। आठ-आठ सिंघाड़े और दो। क्यों बाबू साहब!" बाबू साहब अपनी ऊँटनुमा गर्दन, पाँड़ेजी के बजाय उस सुन्दरी की ओर फिराते हुए बोले—"तब क्या, इतने में क्या होगा? आठ-आठ सिंघाड़े और चार-चार रसगुल्ले दो!"

पाँड़ेजी ने बड़ी उपेक्षा तथा गर्व से दस रुपया का नोट दूकान में यों फेंक दिया, मानो उन्होंने नोट नहीं ठीकरा फेंका हो, जिसके लिये उन्हें न तो तनिक मोह है, न चिन्ता।

दूकानदार सारी बात समझ रहा था। मगर वह करता क्या! सौदा देने लगा। इतने में आ गया एक सुन्दर युवक, जिसे देखते ही वह सुन्दरी तनिक मुसकुराई और दिलदारों का दल एक साथ ही चिल्ला उठा—"अरे तुम घनश्याम? खूब मिले यार! और मिले तो

बड़े मौके पर, वाह—जिओ-जिओ ! खूब जिओ ! मेरी भी आयु लेकर जिओ। कहो यहाँ प्रयाग से कब आए ?"

घनश्याम अँगड़ाइयाँ लेता बोला—"आए तो कल भइया, मगर मर गये दौड़ते-दौड़ते, बहुत काम है, बहुत काम।"

फिर पाँड़े बोले—"धत् तेरी काम की ऐसी-तैसी। काम को मारो गोली। पहले यह बताओ कि तुम कल ही से यहाँ हो और मेरे घर आए तक नहीं। इसकी सजा तुम्हें क्या दी जाए ?"

बाबू साहब ने कहा—"इन्हें भर पेट रसगुल्ला खिलाओ।"

घनश्याम बैठ गया। रसगुल्ले खाने लगा और खाते-खाते समझ गया, ये तीनों दिलदार इस सुन्दरी के हाथ दिल बेच चुके हैं। मुंशीजी ने घनश्याम के कान में आहिस्ते से कहा—"बगल में कयामत देख रहे हो न ? निम्मी, सुरैय्या भी देखें तो उनकी नानी मर जाय।"

बाबू साहब ने कहा—"गजब की चिरई है, भइया घनश्याम ! आँखें देखते हो न ! बापरे, एक दम जागता जादू !"

पाँड़े बोले—"यार, ऐसी ही चीज के लिये प्रेमी लोग पहाड़ ढाहते हैं।"

घनश्याम बोला—"अरे तुम लोग इस ज़रा-सी मामूली बात के लिये इतने पागल क्यों हो ?"

मुंशीजी सीना सहलाते बोले—"यार, तुम इसे जरा-सी और मामूली बात कहते हो ? यहाँ, जिन्दगी का सवाल हो गया है। क्यों पाँड़े ?"

पाँड़े ने कहा—"भाई, भगवान के घर की सौगन्ध, हम आज की रात शायद बच जाएँ, तो बच जाएँ, मगर सुबह जरूर मर जाएँगे—जरूर मर जाएँगे। हमारे "हार्ट" में देखो, पल्पिटेशन शुरू हो गया है।"

बाबू साहब बोले—"मुझे तो नशा आ रहा है भाई !"

घनश्याम बोला—"मैं भी भाई, जब से यहाँ बैठा हूँ, इसी को

देख रहा हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगों ने चीज निहायत बेहतरीन चुनी है। मगर मेरी जान में यह औरत भी चलता-पुर्जा ही मालूम होती है। ठहरो, मैं इससे बातें करता हूँ।"

घनश्याम ने थोड़ी दूर जाकर उस सुन्दरी को संकेत से बुलाया और वह मुस्कुराती हुई घनश्याम के निकट पहुँच गई। थोड़ी देर बाद घनश्याम लौटा और बोला—"वह कहती है, मैं सेवा के लिये तैयार हूँ, आज नहीं, कल!"

"—कल? अरे कल क्यों?" बीच ही में मुन्शीजी तड़पकर बोल उठे—"कल हम बचेंगे? क्यों पाँड़े?"

पाँड़े गिड़गिड़ाते हुए बोले—"अरे हम तो आज रात को अधिक से अधिक दो बजे तक बचेंगे, जहाँ दो से एक सेकेण्ड भी हुआ कि राम राम सत्त।"

बाबूसाहब—"अरे यार, जब हम मर ही जायेंगे तो वह कल हम लोगों की चिता पर क्या करने आएगी? आज की पूछो, आज की! कल-वल नहीं।"

घनश्याम फिर गया और उससे बातें कर लौटा, तो बोला—"वह कहती है, आज मुझे एक सज्जन की सेवा में जाना है। शायद वह 'पेमेन्ट' भी कर चुके हैं।"

पाँड़े बड़े जोश में बोले—"कितना? कितना वह पेमेन्ट कर चुके हैं, हमसे दुगुना ले ले।"

मुन्शी जी और जोश में बोले—"दुगुना क्या, तिगुना ले ले।"

बाबूसाहब छाती कड़ी करके बोले—"तिगुना से भी दस रुपया ज्यादा ले ले। और क्या?"

आखिर बात पक्की हो गयी। इन तीनों दिलदारों को उसका डेरा दिखला दिया गया। रात को एक बजे जब सारा शहर नींद में बेखबर पड़ा था, ये तीनों दिलदार मुँह ढाँपे उस सुन्दरी के घर पहुँचे। इधर-

उधर झाँका, टटोला, खोंखा खाँसा, पर कोई उत्तर नहीं। सारे दरवाजे बन्द। किसी आदमी का पता नहीं। पाँड़े ने सर पीटा—"हाय, गये ५००) सौ मुफ्त में !"

मुन्शी रोये—"आह! बड़ा धोखा दिया ज़ालिम ने !"

बाबूसाहब बोल उठे—"अरे वह ऊपर वाली खिड़की अभी खुली है, पिछवाड़े से। वहाँ चलकर थोड़ा छींको, खाँसो। आशा है बात बन जायेगी।"

तीनों दिलदार दौड़े हुए पिछवाड़े गये। खिड़की के निकट गये। बाबूसाहब ने खाँसा, पाँड़ेजी ने छींका और मुन्शी जी ने सीटी दी। तत्काल वह सुन्दरी खिड़की पर आई और बोली—"बहुत आहिस्ते और सँभल कर आप लोग इसी खिड़की से चले आइए। इसमें छड़ नहीं हैं, सिर्फ दरवाजा है।"

मुन्शीजी नाक दबा कर पनडुब्बे की तरह आवाज बदल के बोले—"मँगर हँम नोंग ऊँपर, ऊँतनी दूँर कैंसे आँवें ?"

वह बोली—"किसी तरह आइए। सिवा इसके दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

मुंशीजी उसी स्वर में बोले "डोंर लटकाइयें, डोंर !"

वह बोली—"डोर नीचे है, नीचे जाने में खतरा है।"

तीनों दिलदारों ने आपस में सलाह की, ऐसा क्यों न किया जाय, हम तीनों एक दूसरे के कंधे पर चढ़कर, खिड़की तक कम से कम एक पहुँच जाए, और जो वहाँ पहुँचे, नीचे से, दो बचे आदमियों को धोती या डोर लटका कर ऊपर खींच ले !"

बात पक्की हो गई। बाबूसाहब के कंधे पर पाँड़ेजी और पाँड़े जी के कंधे पर मुंशी जी। फिर महावीर स्वामी का नाम लेकर बाबूसाहब खड़े हो गये। फिर पाँड़ेजी। फिर मुन्शीजी। मुन्शीजी ज्यों भीतर खिड़की से घर में घुसे तो उनका होश हवा हो गया, और बुद्धि घास चरने चली?

गई। जो देखा आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। एक दम सारा सीन ही बदला हुआ था। उस सुन्दरी ललना-ललाम की जगह एक घोर स्थूल-काय, भयङ्कर मूर्त्ति प्रौढ़ा बैठी थी। और उसके हाथ में एक बेंत की मोटी छड़ी यम के दण्ड की भाँति त्रासदायक, दिखाई पड़ रही थी। मुन्शी बेचारे को काटो तो खून नहीं। हाय रे भाग्य ! आलिङ्गन के मधुर बाहुपाश के बदले, यम का यह भीषण त्रास—मुँगरा की तरह बेंत की मोटी छड़ी ! प्रेमरस बरसानेवाली अँडाकार आँखों की जगह उगलने वाली भयानक आँखें——।

मुँशीजी ने घबड़ा कर अपनी आँखें बन्द कर लीं। इधर नीचे से पाँड़े और बाबू साहब तावड़तोड़ खाँस रहे हैं, तालियाँ पीट रहे हैं। इसपर भी जब मुँशी कुछ नहीं बोले तो नीचे पाँड़ेजी और बाबू साहब मुँशी को गालियाँ बकने लगे। मुँशी यह सब सुन रहे थे, मगर उनकी बोलती बन्द और अक्ल गुम हो गई थी।

इसी समय अँधेरे में पाँड़े और बाबू साहब को मालूम हुआ, कोई उनका गला पकड़ कर घसीटे लिये जा रहा है। यह बेबादल का वज्र कहाँ से गिरा ? इसे न पाँड़ेजी समझ सके, न बाबू साहब ! दोनों की आँखें मारे भय के आप से आप बन्द हो गईं।

इनकी जब आँखें खुलीं तो, देखा मुंशी हाथों से मुँह ढाँपे थरथर काँपते एक ओर खड़े हैं। और सामने वही स्थूलकाया मोटी बेंत लिये बैठी है। अब पाँड़े व बाबू साहब के भी देवता कूच कर गये। इन्हें भी जूड़ी आ गई।

वह प्रौढ़ा सुरसा की तरह मुँह फाड़ कर, और राक्षसी की तरह गरज कर बोली—"कायर ! दिलदार आदमी दिलेर होता है ! दिलदारी में तो दुख उठाना ही पड़ता है। प्रेम में तो मार खानी ही पड़ती है ! तैयार हो जाओ। पीठ इधर करो।"

मुंशीजी "बाप-बाप" चिल्लाते उस प्रौढ़ा के चरणों पर आ रहे :

पाँड़े जी ने अपना जनेऊ दिखाकर अपने ब्राह्मणत्व की दुहाई दी, "मुझे मारिये मत। मैं ब्राह्मण हूँ।"

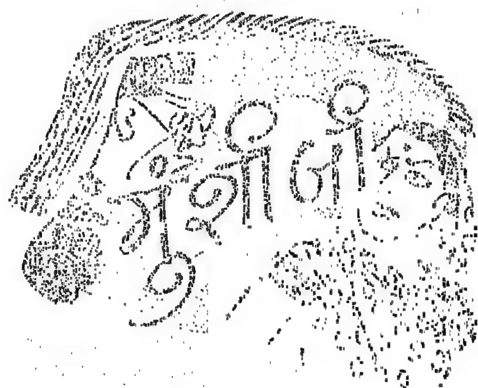
वह प्रौढ़ा बोली, "मगर तुम लोग तो कल मरने ही वाले थे, फिर डरते क्यों हो मरने से! निर्लज्ज तुम ब्राह्मण, यह राजपूत, यह मुंशी, तुम्हारा काम यही है किसी की बहू-बेटी पर कुदृष्टि डालो? मैं छोड़ूँगी नहीं, पीठ खोलो!"

रोते-रोते मुंशीजी की घिग्घी बँध गई। पाँड़े जी की कमर हाथ-जोड़कर झुके-झुके टूटने लगी। और बाबू साहब पैर पर गिरे गिड़-गिड़ाते रहे।

तभी आ गया घनश्याम। वह हँसता हुआ बोला, "जानते हो, यह सारी गड़बड़ी क्यों हुई? पेमेन्ट कम होने पर दूकानदार धोखा देता ही है! और रुपया लाये हो?"

पाँड़े बोले—घनश्याम! बन्धु! तुमने मुझे अच्छा पाठ पढ़ाया। अब भी प्राण छोड़ोगे?—"अच्छा, लीजिए, पहले यह चाय तो पीजिए। बेंत खाने के लिये यह अच्छी शक्ति, साहस और स्फूर्ति देगी।"

वीणा जैसी मधुर ध्वनि सुनकर तीनों दिलदारों ने उधर देखा। सिल्वर के 'ट्रे' में चीन के चमकते हुए प्याले में चाय लिये मन्द-मन्द मुस्कराती वही सुन्दरी खड़ी है, जिसके लिये सब मस्त हो गये। मारे लाज के तीनों का मस्तक घुटनों में धँस गया। परन्तु उस सुन्दरी ने इन तीनों दिलदारों को गद्देदार खाट पर बिठाया। चाय पिलाई और हाथ जोड़ के कहा, "क्षमा! सारा अपराध आप के इन मित्र महोदय (घनश्याम) का है, मैं तो इनकी दासी मात्र हूँ। इनकी अवज्ञा कैसे करती? आपकी करतूतों से मुझे पूर्ण सहानुभूति है।"



मुन्शी जी हमारे गाँव के एक जाने-माने व्यक्ति हैं। इनकी उमर अभी बहुत ही थोड़ी है—महज पचहत्तर साल!—अर्थात् 'साठा तब पाठा'—कहावत के अनुसार मुन्शीजी को जवान हुए कुल पन्द्रह साल हुए हैं! और, अपनी इसी उभरती जवानी के जोश में मुंशीजी परसाल पाँचवीं पत्नी उठा लाए, जिसके सम्बन्ध में मुंशीजी कहा करते हैं—वह इन्द्र के अखाड़े की परी-जैसी सुन्दरी, गुलबकावली के फूल की तरह खुशनुमा और चाँदनी की तरह सुहावनी है।

अपनी नाक पर खतरे का खौफ हमेशा बना रहता है। अतः मुंशीजी अपनी हसीना बीबी की देख-रेख में हमेशा हुशियार रहते। यों तो मुंशीजी भी कम खूबसूरत नहीं थे। उनकी जुल्फ कमाल की थी! साधारणतः सबके सिर में ही जुल्फ होती है, मगर हमारे मुंशीजी

तो सिर से लेकर पाँव तक ज़ुल्फों से लदे थे। मतलब यह कि सारे शरीर में एक-एक अँगुल के बाल बरसात की दूब की तरह खूब लहलहा रहे थे, जिनमें कम-से-कम एक सौ 'कनगोजर' बड़े आनन्द से निवास कर सकते हैं, और, क्या मजाल जो उस बाल की लहलहाती खेती में कनगोजरों का तनिक भी पता चल जाय !

आप सबको निर्विवाद मानना होगा, कि हमारे मुंशीजी इस घोर कलियुग में भी महाबली भगवान राम के महामंत्री जामवन्त के साक्षात् अवतार हैं। यद्यपि लोगों की तो क्या, उनकी विगत तथा वर्तमान पति-प्राणा पत्नी को भी उनके इस बाल-बाहुल्य से काफी नफरत तथा चिढ़ रही, तथापि मुंशीजी को अपने शरीर की इस जामवंती-शोभा पर प्रचुर गर्व एवं पर्याप्त गौरव है। वे कहते—'बार (बाल) दिलदार आदमी को होता है। कहावत है कि 'जिस मर्द के सीने और शरीर में न हों बाल, उसका कभी मत करो एतबार !'

मुंशीजी के मुख-मंडल की जो सबसे प्रिय, दर्शनीय तथा आकर्षक शोभा की वस्तु थी, वह थी उनकी कनगोजिनी नाक। उनकी नाक को ब्रह्मा बाबा ने रच रच के बनाया-सँवारा था। उस नाक को नाक नहीं कहकर, उसकी महत्ता तथा विशालता के द्योतक 'नक' कहा जाय, तो भी उस 'महानक' की बड़ाई का वर्णन अत्यन्त अधूरा ही रह जायगा।

मुंशीजी की नाक ललाट से बित्ते भर ऊँची और सलहथी भर निपटी, भ्रू-प्रदेश से भागती-भागती ओठों के छोर तक आ पहुँची थी। लगता, जैसे उस चतुर कारीगर ने मुलायमी दरवाजे पर उस 'महानक' की सुन्दर आजानी लगा दी हो, जिससे अन्त-विहीन मुख-विवर आँधी, बवंडर या वर्षा की कलाप से रक्षित रहे !

मुंशीजी की नासिका गरुड़ की-सी थी, मानों आपको गरुड़-

नासिका मिली थी। अतः, इस मानी में हमारे मुंशीजी भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ के अवतार थे। और, केवल शारीरिक दृष्टि से ही मुंशीजी गरुड़ के अवतार नहीं, नैसर्गिक दृष्टि से भी गरुड़ के ही अवतार थे। आपकी दृष्टि गरुड़ से भी तीव्र थी! जिसे भी अपने मकान के पास देखते, झट ताड़ जाते,—अवश्य यह हमारी सुन्दरी पत्नी के फिराक में आया है! मुवक्किलों की टेंट में रखे पैसे को तो वे तुरन्त अपनी गृध्र-दृष्टि से देख लेते और झट उसपर गीध की तरह मँड़राने लगते।

और, जिस प्रकार गरुड़ महाराज वैष्णव होते हुए भी पञ्च मकार—माँस, मुद्रा, मीन आदि से वंचित नहीं थे, उसी प्रकार हमारे मुंशीजी भी पञ्च मकार से सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर सके थे।

और, महाबली भगवान हनुमान के तो महाभक्त थे मुंशीजी। उनका 'हनुमान-चालीसा' का पाठ चालीस कोस तक विदित था। चालीसा का पाठ वे नित्य नियमपूर्वक करते। और, इधर ज्योंही उनके मुखारविंद से चालीसा की प्रथम चौपाई 'जय हनुमान ज्ञान-गुन-सागर' निकलती, उधर चौकी कड़ाही में मछली छनाक् से छौंकी जाती। कारण कि 'पाठ' से उठते ही मुंशीजी को तुरन्त भोजन मिलना चाहिए, नहीं तो हनुमानजी पर फेंक दें। पाठ करने में परिश्रम भी तो कम नहीं पड़ता था! पसीने पसीना! वह भी, मुंशीजी का पाठ सारे संसार के पाठ-कर्त्ताओं के पाठ से निराला था! इतना चिल्लाते, इतना चिल्लाते, मानो उनके घर में डाका पड़ रहा हो। और, यह परम सौभाग्य की बात थी, कि मुंशीजी का 'महापाठ' दिन में ही होता; यदि यह रात्रि में भी हुआ करता, तो फिर पड़ोसियों की शामत थी। इस चरम-पुकार से या तो वे रात भर 'रतजग्गा' का आनन्द लाभ करते या बार-बार लाठी उठाके फटकारते घर से बाहर निकल पड़ते कि कहीं डकैती तो नहीं हो रही है।

हाँ, तो, इस पाठ-क्रम तथा श्री बजरङ्गबली के ध्यान-पूजन के साथ-साथ मछली-पाक का भी ध्यान मुंशीजी को पूरा रहता । शायद नौकर गाफिल हो जाय, और मछली अधपकी या जलकर स्वाहा हो जाय, तो सब गुड़ गोबर ! अतः मुंशीजी चार-चार चौपाई का 'इन्टरवल' देकर उसी जोश से चिल्ला पड़ते—"अरे घुरफेंकना, घुरफेंकना ! अरे, मर गया क्या ! जरा उलट-पलट भी करता जा ! नहीं तो एक ओर सब जल जायगी और दूसरी ओर सब कच्ची रह जायगी ! समझा रे ! अरे गकुवा, कुछ सुना रे ?"

मुंशीजी के परम सौभाग्य से या घोर दुर्भाग्य से, उनको सेवक घुरफेंकना भी विचित्र ही मिला था । उमर में मुंशीजी से भी छः साल बड़ा और बिलकुल बज्र-बधिर ! सौ बार गला [illegible], [illegible] की सारी ताकत कण्ठ में उतारकर चिल्लाइए, तो [illegible] घुरफेंकनराम के श्रवण-रंध्र में कुछ सुनाई पड़े, तो पड़े ! मुंशीजी तबाह थे । पर करें तो क्या, लाचारी थी । कारण कि इस अखिल विश्व-ब्रह्मांड में केवल घुरफेंकनराम ही ऐसे जीवट के आदमी प्रमाणित हो सके जो मुंशीजी की सेवा में [illegible] सकते थे । नहीं तो संसार के सारे भृत्य-जीवियों की परीक्षा मुंशीजी के सेवारूपी गरमागरम तवे पर हो चुकी थी, और सब-के-सब घोर असफल सिद्ध हुए थे !

और मैं समझता हूँ, घुरफेंकन भी असफल ही सिद्ध होता, परन्तु उसकी सफलता का [illegible] उसके [illegible] कानों की कृपा है । क्योंकि बधिर होने के कारण वह मुंशीजी की [illegible] आज्ञा-पालन से भी बच जाता और दिमाग बिगाड़नेवाली उनकी गालियाँ भी नहीं सुन पाता । और, मुंशीजी भी [illegible] सन्तोष कर लेते कि बहरा है । इसके [illegible] इसे यदि हटा दें तो दूसरा सेवक कहाँ से लावें ! इधर घुरफेंकनराम भी समझे बैठे थे कि मैं [illegible] भी [illegible] हूँ । एक तो बूढ़ा, दूसरे बहरा, तीसरे अपना सिर

मारने को रखेगा कौन ? गोया, विवशता दोनों तरफ थी। और, इसी विवशता की टुटही गाड़ी पर नौकरी नाक धुनती चल रही थी।

मालिक के इस गज-चिग्घाड़ पर धुरफेंकन घोड़े की तरह कान खड़ा कर सुनता और बड़ी मुस्तैदी से बोलता—"आँच पूरी है सरकार! लकड़ी खूब लहक रही है। रहिए और ईंधन दे देता हूँ।" फिर धुरफेंकनराम दो-चार लकड़ी और चूल्हे में ठूँस मारते! और मुंशीजी बिल्कुल बेअख्तियार हो, बदहवास से चौपाई बड़बड़ाते, चूल्हे के पास पहुँच जाते, और चिल्ला-चिल्लाकर कहते—"अरे बदमाश, गधा, सब जलाकर खाक कर देगा क्या रे! इतनी आँच? इतना ईंधन! हवन हो रहा है क्या रे! निकाल लकड़ी! उलट, उलट जल्दी, नहीं तो सब सत्यानाश हुआ! बदतमीज! बेहूदा! सूअर!!"

मछली उलटवाकर मुन्शीजी पुनः पूजा के आसन पर आसीन होते, और फिर वही चार चौपाई का 'दुहराव' देकर चिल्लाते—"नमक दे, नमक! जल्दी कर!" और धुरफेंकनराम पानी डालने के लिए लोटा उठाते तो मुंशीजी बेचारे को फिर आसन से उठकर चूल्हे के पास पहुँचना पड़ता, और चिल्लाना पड़ता—"पानी नहीं रे, अहमक! नमक दे, नमक, रे नामाकूल!"

रोज का यही धन्धा था, यही नियम था, और यही पूजा-पाठ का क्रम था!

मछली तैयार होते ही मुंशीजी का पाठ समाप्त हो जाता। मुंशीजी झटपट भोजन करते, फिर अपना [illegible] बस्ता काँख में दबाए मुवक्किलों की खोज में कचहरी चले जाते। और धुरफेंकन को चेताए जाते—"देखना, दरवाजे से [illegible] भी नहीं हटना, और कोई भी [illegible] दरवाजे पर [illegible] तो उसे [illegible] मत देना! मगर वह यहीं आवे तो तुरन्त मुझे खबर देना। समझा?"

परन्तु जब-जब मुंशीजी कचहरी की समाप्ति पर घर आकर सामने

पहला प्रश्न घुरफेंकन से यह करते—"क्यों रे घुरफेंकना, कोई रुका था दरवाजे पर?" तब-तब घुरफेंकन नकारात्मक ही उत्तर देता और मारे क्रोध के मुंशीजी बौखला उठते। कहते—"झूठा! रोज झूठ बोलता है! एक दिन भी हमारे दरवाजे पर कोई नहीं रुका! यह मैं कभी नहीं मानूँगा! तुम या तो झूठ बोलते हो या मेरे जाने के बाद तुम भी दरवाजे से गायब हो जाते हो! अब तुम्हें निकाल-बाहर करूँगा! समझ गया, तू नम्बरी झूठा है!"

× × × ×

एक दिन घुरफेंकन गिरता-पड़ता, हाँफता, दौड़ता, कचहरी पहुँचा और घबड़ाई हुई आवाज में बोला—"अरे, गजब हो गया सरकार! अभी, आपके जाने के कुछ ही क्षण बाद, एक मोटा-तगड़ा-सा जवान आया और दरवाजे पर खड़ा हो गया। उसके खड़ा होते ही मैंने कड़ककर पूछा—"क्या है जी! तुम यहाँ खड़े क्यों हो?"

वह बोला—"काम है!"

मैंने जरा और कड़ी आवाज में कहा—"काम है? किससे काम है? मालिक तो कचहरी गए हैं। बस सीधे यहाँ से रास्ता लो, वर्ना गजब हो जायगा।"

वह मुझसे भी ज्यादा जोर से चिल्लाकर बोला—"बस, चुप रहो, एक लफ्ज भी बोलोगे तो जीभ खींच लूँगा।"

इसपर मैं भी चिल्लाया सरकार—"मैं भी मारे डण्डों के भुरकुस कर दूँगा!"

फिर वह चिल्लाया तो मैंने झट डण्डा तान लिया, और ज्योंही मैं मारने दौड़ा कि दरवाजे पर मालकिन आ गईं। आते ही उन्होंने मुझे डाँट दिया और उसे अन्दर बुला लिया।

"ऐं....! उ-उ-उ-उसे, अ-अ-अन्दर बुला लिया....!" मुंशीजी

बीच ही में बेअख्तियार हो चीख उठे। मारे क्रोध के उनकी आवाज लड़पटाने लगी—"तो-तो वह जवान भीतर चला गया!"

घुरफेंकन बोला—"जी, जी, ई, ई....!"

मुंशीजी आँखें तरेरकर बोले—"एकदम अन्दर, बिल्कुल भीतर, घर में चला गया?"

घुरफेंकन—"जी, एकदम अन्दर, एकदम भीतर, बिल्कुल बेरोक सड़सड़ाते हुए चला गया।"

मुंशीजी और घबराकर बोले—"अयँ! सड़सड़ाते हुए भीतर चला गया और मालकिन कुछ न बोलीं?"

घुरफेंकन—"वह क्या बोलतीं सरकार! वही तो उसे अन्दर लिवा गईं! और हँस-हँसकर लिवा गईं!"

"ओं! हँस-हँसकर अन्दर लिवा गईं!"—मुंशीजी मौत के झूले पर झूलते हुए बोले।

घुरफेंकन उसी मुस्तैदी से बोला—"जी, जी, जी, ई-ई-ई—!!"

मुंशीजी सक्रोध बोले—"अच्छा, बता तो उस साले का नाम। अभी बारह आने का सवाल देता हूँ, एस० डी० ओ० के कोर्ट में 'ट्रेस-पासिंग' का। तुरन्त साले को भेजवाता हूँ जेल।

घुर०—"नाम मुझे नहीं मालूम उसका सरकार!"

मुंशी—"कैसा था?"

घुर०—"गोरा था।"

मुंशी—"अरे गोरा क्या?"

घुर०—"वही, गोरा जैसा होता है, सरकार! वैसा ही था!"

मुंशीजी चिढ़कर बोले—"अरे, नामाकूल का बच्चा! गोरा क्या? गोरा अँगरेज था?"

घुर०—"नहीं सरकार, अँगरेज नहीं था, गोरा था।

मुंशी—"अच्छा, चल दौड़, जल्द घर चल। अभी तो वह घर में ही होगा?"

घुर०—"जी, जी, जी!"

मुंशीजी हाँफते हुए घर पहुँचे और आते ही पत्नी से बोले—"वह गोरा-गोरा, कौन साला अभी आया था, जिसे तुम अन्दर लिवा गईं और वह घुरफेंकन को मारने दौड़ा था। बताओ, वह कहाँ है? अगर वह अपने बाप का बेटा है, तो फिर आ जाय मेरे सामने!"

मुंशीजी की पत्नी ने कहा—"यहाँ गोरा-काला, कोई नहीं आया था।"

मुंशीजी चिल्लाकर बोले—"चुप रहो! मैं तुम्हारी जाति के प्रपंचों, पाखंडों से पूरा वाकिफ हूँ। श्री रामायणजी को मैंने लाखों बार पढ़ा है। उसमें तुम्हारी जाति का जैसा बखान है, वह जग-जाहिर है। झूठ की खान, छल की मोटरी, और माया की महा-गठरी तुम औरत जाति हो। सच कहो, वह गोरा शख्स कौन था? क्यों आया और आया तो साला भागा कहाँ?"

मुंशिआइन शान्त, सुदृढ़ स्वर में बोलीं—"वह मेरे मृत पिताजी की आत्मा थी। मुझे लेने आई थी। तुम मुझे मेरे मायके नहीं भेजते, इसीसे पिताजी की आत्मा बहुत दुखी है। वह बिना मुझे लिए नहीं जायगी। वह कह गई है, रात में बारह बजे वह फिर आयगी।"

मुंशीजी गम्भीर स्वर में बोले—"हूँ! अच्छा तो उस आत्मा को भी आज भागनी पड़ जायगी! वह गोरा, और मैं प्रेत-पिशाचों के महान संहार-कर्त्ता भगवान महावीर का महाभक्त! आज इसका फैसला हो जायगा कि तुम्हारे मृत बाप की आत्मा बली है या बजरङ्गबली का भक्त!"

फिर मुंशीजी अपने परम आज्ञाकारी एवं सुन्दर सेवक घुरफेंकन से बोले—"घुरफेंकन, आज इसके बाप की आत्मा इन्हें लिवाने

आयगी, समझा ! आते ही मारो, खूब मारो, खूब मारो ! इतना मारो कि साली आत्मा का खात्मा हो जाय ! फिर आने का नाम न ले। खबरदार, अगर इसमें चूकोगे तो बस, सदा के लिए बर्खास्त !"

घुरफेंकन बड़ी वीरता तथा दृढ़ता से बोला—"सरकार, भगवान करे कि वह आत्मा आवे, फिर देखिए, अपने इस सेवक घुरफेंकन के डंडे की करतब ! मार के कचूमर नहीं निकाल दूँ तो मेरा नाम....!"

मुंशीजी दाद देते हुए बोले—"शाबाश पट्ठे ! शाबाश !!"

फिर नौकर-मालिक, दोनों साठ-साठ बरस के पट्ठे, पोरसे-पोरसे भर का लठ लिए आत्मा के शुभागमन की प्रतीक्षा करते रहे। ठीक साढ़े दस बजे इन दोनों पट्ठों की आँखों पर निद्रा महारानी की घनघोर चढ़ाई हुई और दोनों सो गए,—मुंशी अपनी खाट पर, घुरफेंकन ओसारे में अपनी टाट पर !

एकाएक बारह बजे घुरफेंकन की छाती पर एक बिल्ली ऊपर छप्पर से चूहा पकड़े कूदी और भागती हुई मुंशीजीवाले कमरे में चली गई ! घुरफेंकन हड़बड़ाकर उठा, भड़भड़ाकर मुंशीजी के कमरे में पहुँचा और लगा दनादन लाठियाँ चलाने। मुंशीजी घबड़ा कर उठे ही थे कि घुरफेंकन ने सड़सड़ाकर दो लाठी और लगाई। मुंशीजी औंधे मुँह खाट पर गिरे, और घुरफेंकन का डण्डा उनकी पीठ पर बरसने लगा।

मुंशीजी ज्यों-ज्यों जोर-जोर से हनुमानचालीसा की चौपाई चिल्लाते, घुरफेंकन का लठ त्यों-त्यों जोर-जोर से और जल्दी जल्दी उनकी पीठ पर पड़ता। मुंशीजी समझ गए, ससुर की आत्मा श्री महावीर स्वामी से भी महाबली है, तो लगे गिड़गिड़ाने—"हे हमारे ससुरजी की महाबली आत्मा, मैं मान गया, आप महावीर से भी महाबली हैं ! मेरा अपराध क्षमा हो ! आप अभी अपनी सुपुत्री को घर ले जाइए और जन्म भर मत भेजिए ! मगर मुझे बख्श दीजिए; नहीं तो, मैं तो

मर ही जाऊँगा, साथ ही आपकी परम प्रिय सुपुत्री भी विधवा हो जायगी। अब मत मारिए, मत मारिए, नहीं तो मर जाऊँगा, मर जाऊँगा !!"

डण्डे मारते-मारते बुरफेंकन का हाथ दुख गया था। बहरा होने के कारण वह मुंशीजी की बोली सुन नहीं सका था। उसने समझा, इतनी मार पर भला आत्मा क्या खाकर जिन्दा रहेगी? जरूर वह मर गई होगी! चलो, अब आराम करो और सबेरे मालिक से इनाम लो।

मारे पीड़ा के मुंशीजी सारी रात कराहते रहे और मारे खुशी के बुरफेंकन सारी रात चिल्लाता गाता रहा। बड़े सबेरे वह मुंशीजी की खाट के पास पहुँचा और बड़े गर्व से बोला—"सरकार, रात को ससुरजी की आत्मा को इतनी मार मारी, इतनी मार मारी, कि उसका बुखार छूट गया होगा। हा-हा-हा-हा! सुना सरकार, पहले वह हमारी छाती पर कूदी, फिर इस खाट पर आकर सो रही! मगर मैं कब चूकनेवाला था! तुरन्त लट्ठ लिए पहुँचा और इतना मारा कि बस, पूछिए मत!"

मुंशीजी चौंककर उठ बैठे। अब उनकी समझ में आया, मेरा भुर्ता बनानेवाला मेरे ससुर की आत्मा नहीं, बल्कि वह मेरा नामकूल नौकर बुरफेंकना है। वह बोले—"बुरफेंकन, तुम अब अपने घर जाओ।" फिर अपनी पत्नी के पास जाकर बोले—"महारानी, तुम अपने बाप के घर जाओ।" फिर वे अपने परमाराध्य इष्टदेव महावीर की मूर्ति की गर्दन पकड़कर उसे कुएँ में डालते हुए बोले—"महावीर स्वामी, तुम भाग्य बहुत बड़े [illegible] आराम करने के लिए अपने [illegible] रहेगा। हटाओ झमेला यहाँ से।



चार यार....! पर चारों-के-चारों बेकार !

बेकार लोग प्रायः दिलदार हो जाते हैं, या नेता ! परन्तु, ये चारों यार न दिलदार हो सके, न नेता । कारण ?

दिलदारी के लिए दौलत और काफी दौलत चाहिये । सो इनके पास टका तक नहीं था । और, नेता होने के लिए दिमाग चाहिए । सो, इनके दिमाग के सारे 'स्क्रू' बिलकुल ढीले पड़ गये थे । स्कीमें बहुत लम्बी-चौड़ी बनाते । 'प्लान' काफी बड़े-बड़े रखते, पर, सब जिह्वा से; दिल, दिमाग और काम से नहीं; कारण इन तीनों की केवल कमी ही नहीं थी, बल्कि एकदम अभाव था इनमें ।

चारों यार रोज शहर के एक निराले स्थान में एकत्र होकर 'क्या किया जाये', इस विषय पर आज छः मास से विचार-विनिमय कर रहे

थे। और, छः मास बाद कोई बड़ी-सी कम्पनी खोलने के विषय में चारों मिलकर सहमत हुए।

और, पूरे ७६ घण्टे की घोर माथा-पच्ची और कठोर वाद-विवाद के पश्चात् चारों मित्र इस राय पर सहर्ष सहमत हुए, कि आज देश की नैतिक स्थिति, राजनीतिक स्तर या सांस्कृतिक परम्परा की दशा चाहे जितनी दयनीय हो, जितनी गिरी हो; पर आज भी सारे विश्व में प्रेम की परम्परा, प्रेम का महान् मानदण्ड, प्रेम के प्रति लोगों की श्रद्धा-भक्ति, आदर-आग्रह में रञ्चमात्र भी न्यूनता नहीं आई है। आज संसार में एक प्रेम ही ऐसा है, जो अपने स्तर से नीचे तो क्या, ऊँचे ही चढ़ा है।

और, प्रेमियों के महान् उस्ताद हुए हैं, अमर कीर्तिमान अक्षय-नाम महात्मा मजनूँ साहब तथा उनकी प्राणप्रिया प्रेयसी होने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है, महादेवी लैला साहिबा को। अतः, यदि इन महादेवीजी के शुभ नाम पर कम्पनी कायम की जाय तो इसमें सन्देह की सरसों बराबर भी गुञ्जाइश नहीं कि सर्वसाधारण का आकर्षण कम्पनी की ओर उसी तरह होगा, जिस तरह देशभक्त लोगों का आकर्षण मिनिस्टरी के लिए, विद्यार्थी [illegible] के लिए, और पूँजीपति सज्जनों का सरकारी कन्ट्रैक्टों के लिए [illegible] है।

मौलवी अब्दुल गफूर साहब [illegible] में खोंचते हुए बोले—सुभान अल्लाह, नाम तो काफी हसरतजदा रक्खा गया यार....! मगर कम्पनी में सामान क्या-क्या रहेगा?

मुन्शी लरेगन लाल, यानी मिस्टर टी० लाल, एफ० ए० फेल बोले—सामान की फिक्र [illegible]! [illegible] तो [illegible] रक्खेंगे कि एक बुलावे मौजूद [illegible]! और, [illegible], ऐसा सामान ढूँढने पर भी कहीं नहीं मिले।

शुभ [illegible] श्री पुरोहित बोले—ठीक, ठीक! [illegible]

दाम कसकर लेंगे! जो चीज कहीं नहीं मिलती, सिर्फ एक ही जगह मिलती है, उसका दाम कसकर रखना ही व्यवसायिक बुद्धिमत्ता है।

ठाकुर गरजनसिंह गरजकर बोले—प्रथम-ही-प्रथम ग्राहक-मुण्डन-क्रिया के हम भई, प्रबल विरोधी हैं। इससे कम्पनी की बदनामी होगी। ग्राहक जब यह जान जायँगे कि यहाँ दाम कसकर लिया जाता है, तब फिर पाँव पड़ने पर भी, कम्पनी में थूकने तक कोई नहीं आयगा।

श्री धुरफेंकन गुप्त बोले—बाबू साहब, व्यवसाय के मामले में तुम कुछ नहीं जानते। यह हम वैश्य-वणिकों की चीज है। अतः कम्पनी मेरी राय से चलेगी।

मुन्शी तरेगन लाल तड़पकर बोले—मगर सामान मेरी राय से आयगा। दाम भले ही तुम्हारी राय से रखा जाय।

मौलवी गफ़ूर साहब जरा मीठे गुस्से से बोले—लाहौल! क्या बकवास शुरू कर दी! दाम या सामान चाहे जिसकी राय से मँगाया या रखा जाय; पर कम्पनी की निगरानी, आमद-खर्च का कन्ट्रोल मेरे जिम्मे रहेगा।

ठाकुर गरजन सिंह फिर गरजकर बोले—मगर 'रोकड़' (रुपया) मैं रखूँगा। पैसा मजबूत आदमी के ही पास रहना चाहिए।

श्री धुरफेंकन गुप्त पुनः ललकार बोले—रोकड़ का काम राजपूत नहीं जानते, बनिया जानते हैं। हाँ, तुम इन तीनों से मजबूत जरूर हो, इसलिए कम्पनी के पहरे का जिम्मा तुम्हें जरूर सौंपा जायगा।

ठाकुर गरजनसिंह इस बार एकदम झल्लाकर बोले—तो तुमने मुझे कोई पहाड़ी 'भैय्या' समझ लिया है क्या, जो लाठी लेकर केवल पहरा दिया करूँगा? अरे, वाह रे, जरा अपना मुँह तो देखो!

मालिक तुम, और पहरेदार मैं! यानी ठाकुर....! ऐसा कभी न होगा। यह तो वही बात हुई कि बाभन नाचे और धोबी देखे!

मौलवी गफ़ूर साहब, पान की पीक अपने होंठों में सँभाले, बोले—“अरे, तुमलोग, फिर बकवास ले बैठे! लाहौल....!”

मौलवी साहब ने जो जोर देकर जोश में ‘लाहौल’ कहा, तो होंठ फैल गये और लाल-लाल गाढ़े थूक के डबल कुल्ले ने, उनकी ससम एडवर्डनुमा दाढ़ी को रँगते हुए, मलमल के सुफेद कुरते को भी सराबोर कर डाला। मौलवी साहब बेतरह भिन्नाए,—तौबा! तुम नाफ़ाकूलों की शोहबत भी जहमत! तुम बक-बक करो और कपड़ा खराब हो मेरा! अरे, म्यों, काम की बात करो, काम की! सामान क्या-क्या रहेगा? उनकी कीमत क्या-क्या रहेगी? कम्पनी अपनी है, इसके मालिक और नौकर सब हैं और रहेंगे।

फिर कम्पनी के मालिकों ने सूई-डोरे से लेकर हीरे के कंगने और इयरिंग तक कम्पनी में रखने के लिए एक लम्बी फेहरिश्त तैयार की। श्री तुरफेंकनप्रसाद गुप्त ने कम्पनी के कुल सामान का एक तख़मीना किया—डेढ़ लाख चौंतीस हजार, तीन सौ छः आने, साढ़े सात पाई।

ठाकुर गरजनसिंह बहुत भूखे थे। सुबह दस बजे के बैठे-बैठे शाम हो गई थी। सवेरे भी बेचारे नाममात्र का ही नाश्ता कर, कम्पनी शीघ्र खोलने की इच्छा से, विचार-विमर्श करने चले आये थे। उन्होंने झटपट जेब से मूँगफलियाँ निकालीं और उन्हें दाँतों से कच्चा-कच्च फोड़कर ताबड़-तोड़ चबाने लगे।

मुन्शी तरैनालाल, सुबह से शाम तक मैदान की खुली हवा में बैठने के कारण काफी ठरंडे पड़ गये थे। नाक पानी हो गई थी। अतएव जभी दनादन नाक का [illegible] से [illegible] पर फायर करते और नाक छिड़क छिड़ककर जमीन पर फेंकते।

इधर मौलाना का भी पानदान खाली हो गया था। उन्होंने

घुरफेंकन गुप्त का कन्धा पकड़कर कहा—लाहौल ! ऐन मौके पर पानदान साला भी दगा कर गया ! अरे ! गुप्ता, तुम्हारे पास चार पैसे हों, तो भई, बराए मिहरबानी मेरे लिए तकलीफ करके इंशाल्ला चार ही बीड़े सही, पान लेते आओ ।

श्री घुरफेंकन गुप्ता फौरन अपने दोनों हाथ और मुँह आसमान की ओर उठा, मुँह फाड़कर जम्हाइयाँ लेते हुए बोले—हरि, हरि ! बैठे-बैठे सारी देह जैसे चूर-चूर हो गई । सबेरे भी घर में भोजन नहीं बना । शाम को भी बनेगा या निर्जला एकादशी का ही महापुण्य, लूटा जायगा, भगवान जानें ।

मौलाना अधीर होकर फिर बोले—तो तुम्हारे पास पैसा नहीं है, क्यों ? लाहौल ! जाने वह हरामजादी टिकियावाली शैतान किस दोजख से खूँटा तुड़ाकर हमारे पड़ोस में आ बसी ! जिस दिन इस चुड़ैल का मनहूस चेहरा सुबह-सुबह देख लेता हूँ, वह दिन जरूर बुरा जाता है । एक तो सुबह से पेट में अनाज का एक दाना नहीं; दूसरे, इस घास-पात पर भी आफत ! मुसीबत है यारो, मुसीबत ! लाहौल पढ़ो इस मुल्क पर, इस सल्तनत पर, जहाँ हमलोगों के जैसे बेदारमग्ज, बेदारदिल भूखों मरते हैं । सल्तनत हमलोगों के लायक किसी काम का इन्तजाम नहीं करती ।

मुंशी रोगनलाल तड़पकर बोले—और क्या. यह गुप्ता इतना माकूल फाइनेंस मिनिस्टर होता कि बस रे बस ! हर साल सात करोड़ से कम नहीं बचाता !

ठाकुर गरजन सिंह गरजकर बोले—अबे यार मुंशी, पुलिस-मिनिस्टर हमसे बढ़कर कौन मजबूत होता । भगवान जानता है, कल पाव भर सत्तू पर चौंसठ घण्टे काट दिए । और आज बारह घण्टे बाद, इस पुड़ी भर मूँगफली के सहारे जीता रहा हूँ ! फिर भी तुम्हें, देखना हो तो कहो, चार मील चार मिनट में दौड़कर चला जाऊँ

और चला आऊँ! हाँ, है कोई इस सल्तनत में इतना मजबूत पुलिस मिनिस्टर? कहो!

मौलाना बोले—अरे यार ठाकुर, मुझे 'बोस्ताँ' पढ़े पैंतीस साल हो गए, मगर आज समूची 'बोस्ताँ' के हरूफ-ब-हरूफ मुझे याद हैं। है कोई ऐसा काबिल याददाश्तवाला तालीम-मिनिस्टर? एक भी नहीं! क्यों तरेगन? लाहौल! अरे, तुम तो ऊँघ रहे हो!

तरेगन—अरे भाई, मैं अभी जिन्दा हूँ, यही ताज्जुब है। मुझ-सा कमजोर आदमी, और फाके पर फाका! मजाल है जिन्दा रहना!

गुप्ता जी बोले—रात बढ़ती जा रही है। अब इस मैदान में बैठकर ठण्ढ खाने और निमोनिया बुलाने से क्या मतलब? चलो, घर चलें। अब कल, क्या करना चाहिए, इसपर फिर विचार होगा।

कम्पनी के मालिक अपने-अपने तशरीफ अपने-अपने घर ले गए। मगर मुकद्दर जिसपर नाराज होता है, उसपर ठीकरा तक नाराज हो जाता है। फिर घर की देवियों का, जो बीवी या देवी के नाम से प्रसिद्ध हैं, जो शौहर-नामक जानवर के कन्धों पर ख्वामख्वाह सवार करा दी गई हैं और जिनका बोझ ढोते-ढोते उस बेचारे जानवर के जबड़े से फेन निकल रहा है और बोझ ढोने में नितान्त अशक्त, असमर्थ होकर जो शौहर अपने बोझ को पटक देता है, उसपर नाराज होना कौन गैरमुनासिब है? जिसे चोट लगेगी, वह तो चिल्लाएगा ही। चुनाञ्चे, 'दी लैला एण्ड को०' के मालिकों पर इनकी मालकिनें, मतलब बीवियाँ या देवियाँ, नाराज होकर चीखें-चिल्लाएँ या कोसें-कलपें तो क्या बुरा! क्या बेजा!

मियाँ मगन साहब ने ज्यों ही घर में कदम रखा कि बीवी साहिबा भूखी बाघिन की तरह झपट पड़ीं—वाह रे मियाँ, कुर्बान जाऊँ! सुबह-सुबह के गए, दूल्हा-भाई अब आठ बजे रात को जमींदारी से तहसील वसूल करके लौटे हैं! शादी करते शर्म नहीं आई! छः-छः लड़के

पैदा करते लाज नहीं लगी! अब मुँह दिखाते लाज लगती है। छिः! जिन्दगी भर के निठल्ले! जाँगर चोर! न हो, मुझको कहीं बेच दो। बच्चों को जहर दे दो। यों तिल-तिल करके, दाने-दाने बगैर, तड़पाके तो मत मारो! नहीं तो, यहाँ तो भोगते ही हो, अल्लाह के यहाँ भी भोगोगे!

मियाँ गफूर बड़ी गम्भीरता से बोले—कुलसुम की अम्मा! इन्सान का ही नहीं, भगवान का भी एक-ब-एक कोई काम न कभी हुआ है, न होगा। यह इतनी बड़ी दुनिया महज कुछ लमहों में नहीं बनी। खुदा को मिट्टी खोदनी पड़ी। इन्सान के बेशुमार ढाँचे बनाने पड़े। मुद्दतों तक उन्हें सँवारना पड़ा। आँख, कान, हाथ, पाँव जोड़ने पड़े। फिर रूह बनाकर डालनी पड़ी। और, तब इन्सान बना। फिर अल्ला मियाँ को इन्सानों के रहने के लिए दुनिया बनानी पड़ी। उस वक्त इस दुनिया का चप्पा-चप्पा पानी और कीचड़ों से भरा था। सुभान अल्लाह, सुभान अल्लाह! बेचारे मियाँ को, जाने, कई लाख बरस तक पानी उलीचना और कीचड़ साफ करना पड़ा था। पोली जमीन को सख्त बनाने के लिए आफताब बनाना पड़ा, तब यह दुनिया बनी और इन्सान से आबाद हुई—जी!

बीबी बोली—ठीक तो कहते हो! जब खुदाताला—जैसे सारी ताकतों से भरपूर, ला-महदूद को भी अपनी दुनिया बसाने के लिए इतनी पुरजोर मशक्कत करनी पड़ी, तब तुमने अपनी दुनिया बसाने के लिए कौन-सी मिहनत आजतक की है क्यों? कोढ़ी की तरह बैठे-बैठे घर की सब लेई-पूँजी चाट गए। यहाँ तक कि नाक की एक कील तक नहीं छोड़ी। अब क्या खाओगे? अब तो खाने के लिए सिर्फ मेरा मांस ही बचा है। इसी से तो कहती हूँ, मुझे कहीं बेच दो, या खा सको तो चबाकर खा जाओ; मगर यों दाने-दाने के बिना मुझे या मेरे बच्चों को मत मारो।

मौलवी गफूर बोले—हाँ, अभी तुमने बहुत समझदारी की बात बहुत दिनों पर फरमाई कि मैंने अपनी दुनिया बसाने के लिए क्या किया? तो सुनो, मैंने अपनी दुनिया बसाने के लिए सबसे पहला काम और भारी मशक्कत का काम यह किया कि तुमसे शादी की। और, इंशाल्ला, शादी करके ही चुप बैठा नहीं रहा, अबतक आध दर्जन औलादें पैदा कर दीं, आगे की अल्लाह जाने! अब रहा इन बच्चों की रोटी का इन्तजाम! तो, जिस खुदा ने इन्हें पैदा किया है, उसका लाजमी फर्ज है, इन्सान के इन बच्चों की रोटी का इन्तजाम करना। अगर वह नहीं करता है, तो वह खुदा नहीं है। और, यह तय है कि ऐसे बेवकूफ खुदा की खुदाई जरूर फेलियोर होगी। तो, मानना होगा कि खुदा बेवकूफ नहीं, दानाओं का दाना है। और, इतनी जाँफिसानी से बनाई हुई अपनी खुदाई को वह हरगिज फेलियोर होने नहीं देगा, समझी!

बीबी बेजार हो बीच ही में बोल उठी—अरे, तो क्या मेरे ये शीरख्वार बच्चे [illegible] मासूम की तरह खुदा का आसरा करें? अ[illegible] खुदा का ही, तुम्हारा यानी बाप का कोई फर्ज [illegible]! [illegible] ऐसी बातें बनाते!

गफूर साहब बोले—डूबे वह, जो बेशर्म हो। मैं क्यों डूबूँ? अब रही मेरे फर्ज की बात! तो मैं बहुत जल्द एक बहुत बड़ी कम्पनी स्टार्ट करने जा रहा हूँ; और अबतक स्टार्ट कर भी दिया होता, मगर इसी वास्ते मुझे तालीम मिनिस्टर बनाने की बात गवर्नमेण्ट से चल रही है। इस शहर के सबसे बड़े काबिल आदमी मुंशी [illegible] इसके मुतल्लिक सरकार से लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। और, कम्पनी चलाने के लिए इस शहर के सबसे बड़े दौलतमन्द साहू [illegible] सुरेन्द्र कुमार और जमींदार अर्जुन सिंह [illegible] आधा रुपया देने पर आमादा हैं।

कम्पनी का नाम भी रखा जा चुका है, 'दी लैला एण्ड को०', सामान की फेहरिश्त भी बन चुकी है—समझी!

इस कम्पनी के खुलने की बात तो आज चार माह से सुन रही हूँ।—इतना कहकर बीबी चुप हो रही तो मियाँ भी चुप हो रहे। रात बीत गई। सबेरा हुआ। और, फिर नित्य-नियमानुसार कम्पनी के चारों मालिक मैदान में आ डटे। गुप्ता जी आज बहुत खिन्न और ग़मगीन थे। मालूम हुआ कि उनकी देवी जी, उनके घर पहुँचने के पहले ही कहीं गायब हो गईं। मुंशी तरेगनलाल की जबानी यह मालूम हुआ कि उनकी पतिव्रता पत्नी ने, पातिव्रत्य की लाख शिक्षा, नसीहत पाने पर भी यह नोटिस दे दी है कि अगर कल से भोजन का कोई प्रबन्ध नहीं होगा, तो वह भी [illegible], मुंशी तरेगनलाल की ही तरह, जहाँ जी चाहेगा, वहीं निकल चली जायँगी। कम्पनी खोलने की आशा और आश्वासन पर वह अबतक अपने सारे प्रिय आभूषण तरेगनलाल की उदर-दरी में झोंक चुकी थीं।

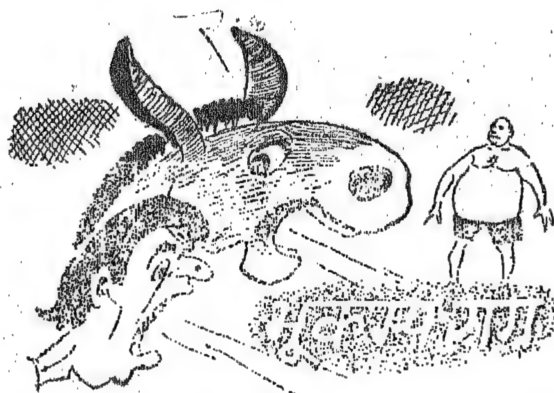
ठाकुर गरजन सिंह गरजकर बोले—भाइयो, हम तो सीधी तरह जानते हैं कि 'मतलब का संसार साधो, मतलब का संसार! बेटा-बेटी, जोरू-जाँता सब मतलब के यार, सन्तो, सब मतलब के यार!' सब अपना-अपना सुख देखता है। यह संसार ही एक महामाया और धोखे की टट्टी है। हमारा शास्त्र कहता है—ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या! तो फिर इस मिथ्या जगत् के झूठे माया-मोह में पड़कर इस सुन्दर काया को कष्ट देना तो मूर्खता है। और, ऐसी मूर्खता ठाकुर गरजन सिंह कभी नहीं करेंगे। अतः प्यारे भाइयो, तुमको सादर नमस्कार! और, तुम्हें भी सविनय प्रणाम, हे संसार! ठाकुर गरजन सिंह चले अब उत्तराखण्ड की गिरि-गुफाओं में ब्रह्म से साक्षात्कार करने!

गुप्ता जी रोकर बोले—मेरी औरत बिना पूर्व सूचना के भाग

गई। अब इस नगर में कैसे अपना मुँह दिखलाऊँ ? मैं जाता हूँ, रेल से कट-मरने।

मारे फाका और परेशानी के तरेगनलाल पागल हो गए। परन्तु मौलवी गफुर साहब अपने फर्ज पर साबित रहे। मकान गिरवी रखकर एक टमटम और घोड़ी खरीदी। घोड़ी का नाम रखा 'लैला' और अपने टमटमवाले कारबार का 'दी लैला एण्ड को०'।

इस तरह एक मेम्बर ने 'कम्पनी' खोलकर और मेम्बरानों की लाज तो रख ली ! यह तो मानना ही पड़ेगा !



माफ कीजिएगा ! यदि आपके पड़ोस में धोबियों का एक पूरा मुहल्ला ही बसा हो, और उन धोबियों के शानदार गधे हों, और वे सुबह-शाम, रात-बिरात जोर-शोर से रेंकते हों, तो इसमें घबराने या शान्ति भङ्ग होने की कोई बात नहीं है। अगर आपके घर के पास ही कोई पागल हाथी रहता हो और वह आठों पहर चिंघाड़ता रहता हो तो भी परेशानी की कोई बात नहीं है। कारण, आप समझ ही न पाएँगे कि वह गधा या हाथी बोल रहा है !

परन्तु, आपके परम सौभाग्य से या घोर दुर्भाग्य से अगर आप के पड़ोस में [illegible] जैसे भयानक नाम का कोई गायक पैदा हो जाए जिसके गले से कभी 'औं-औं औं—!' की ध्वनि निकले और ऐसा मालूम हो कि कोई तीन-चार साल का बच्चा सिसक सिसक कर रो रहा है; कभी 'अ-अ-अ्—' का स्वर निकल कर ऐसा लगे कि किसी की

गर्दन बड़ी निर्दयता से घोंटी जा रही है; कभी —'आ—आ—ओ—ओ—' की आवाज निकल कर ऐसा जान पड़े कि कोई अपने हलक में अपना समूचा हाथ ठूँस कर 'कै' कर रहा है; फिर ऐसा सुन पड़े कि कोई घण्टों 'री-ई-ई-ई !' कर रहा है, मानो उसकी जीभ ऐंठी जा रही हो; और फिर कोई कलेजे की सारी ताकत कण्ठ में उतार कर सहसा बड़े जोर से चिल्ला उठे—'हू-हू-हू-हू—डा-डा-डा—'' जैसे उसके घर में आग लगी हो अथवा उसे कोई बड़ी बेरहमी से पीट रहा हो; तब—! तब, सच कहिएगा, उस वक्त आपके दिल और दिमाग की क्या दशा होगी ?

कभी तो आप घबराएँगे कि यह कौन रोने लगा। किसे हैजा हो गया जो 'कै' कर रहा है ! और कभी एकाएक चिल्लाहट से चौंक कर आपका कलेजा धक्-धक् करने लगेगा कि कहीं डकैती हो रही है। किस पर मार पड़ रही है ! कहाँ आग लगी है !

अपने घोर सौभाग्य से और हम अभागे पड़ोसियों के महा-दुर्भाग्य से हमारे पड़ोस में एक सज्जन के शरीर में बैजूबावरा और मियाँ तानसेन की परम तेजोमयी आत्माएँ बड़े प्रबल रूप से उतर पड़ी हैं जिनकी संगीत-साधना, यानी 'रियाज़' व 'मश्क़' का कोई निश्चित समय नहीं है। चाहे रात के दो बजे का गहरा सन्नाटा हो अथवा चार बजे का ब्राह्म-मुहूर्त, चाहे सात बजे का सवेरा हो या बारह बजे की दोपहरी या छः बजे की संध्या—गोया, जब जी में आया, तानपूरा लेकर बैठ जाते हैं और अपना वही 'भूकम्प-राग' अलापने लगते हैं—'हू-हू—डा—! —ताना—री-ई—री-ई—!''

दो बजे रात को इस 'हू-ऊ-ऊ-अ—आ—ता' और 'ताना री—री—' की वे सहसा [illegible] गाढ़ी नींद में सोए हुए बच्चे भी चौंक उठते हैं। औरतें बेचारी डर कर निद्रानिमग्न पुरुषों को झकझोर कर जगाने लगती हैं। और मैं [illegible] मेज पर [illegible] कर माथा पकड़

कर बैठ जाता हूँ। सोचा हुआ सारा 'प्लाट' इस भयङ्कर राग के एक ही तूफान में तीन-तेरह हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि गायक महोदय के इस विकराल चीत्कार से एक प्रकार से मुहल्ले की रखवाली हो जाती है। चोर तो रोज आते नहीं, पर यह 'हुः-हाः! ताना-री-री' की चिल्ल-पों रोज चालू रहती है और घर में चोरी हो जाने से भी ज्यादा दुखदायी लगती है!

एक दिन गायनाचार्य महोदय के ही घर की स्त्रियों के बुरी तरह रोने-चीखने की आवाज सुन पड़ी। मुहल्ले के कई लोगों के साथ हम भी गिरते-पड़ते उनके घर गये। जो देखा तो अवाक् रह गये।

देखा कि गायक महोदय के दाहिने कन्धे पर उनका भारी भरकम तानपूरा पड़ा है और वे अपना बायाँ हाँथ साँप के फन की तरह बनाये उसे एक अजीब अदा से हिला रहे हैं। आँखें बेतरह फैल गयी हैं। मुँह लकवा लगे-सा टेढ़ा हो गया है। और गले से 'अ्-अ्-अ्-अ्—!' की आवाज़ अविराम निकल रही है। और मजा यह कि हम लोगों को देखते ही यह आवाज़ और दुगनी-तिगुनी तेज हो गयी। हाथों की हरकत की रफ्तार और बढ़ गया। मुँह और ज्यादा फैल कर टेढ़ा हो गया। आँखें और डरावनी लगने लगीं।

आयुर्वेदाचार्य चिकित्सक-चूड़ामणि पं० पपीता पाँड़े छूटते ही बोले—"अपस्मार, अपस्मार, अर्थात् मृगी! मस्तिष्क के स्नायु-समूह जब बेहद दुर्बल हो जाते हैं, अथवा रक्त-प्रवाह की प्रगति रक्ताधिक्य से जब अतीव द्रुतगामिनी किम्वा प्रवाहिनी हो जाती है, तब यह विकराल बीमारी मनुष्य को हो जाती है। सम्प्रति मस्तक पर जल दो, जल! अनवरत, अविराम! शीघ्रता करो, नहीं तो इनकी जीवात्मा शीघ्र प्रस्थान कर जाएगी।"

मैं नहीं कह सकता कि भीड़ लगाये खड़े पड़ोसी लोग आयुर्वेदाचार्य का भाषण समझ सके या नहीं, परन्तु भगवान की कृपा से और

गायक महोदय के महाभाग्य से, रोग का इलाज यानी सिर पर लगातार पानी डालने की बात वे अवश्य समझ गये। और गायक महोदय के सिर पर गगरे पर गगरा पानी बड़ी तत्परता से उँड़ेला जाने लगा।

दस-बारह गगरा पानी सिर पर डालने के बाद उनका 'अपस्मार' तो दूर हुआ किन्तु एक नयी बीमारी उनको यह हो गयी कि वे सब की मा-बहनों का विवाह कुत्ते, गधे, सुअर और ऊँट से कराने लगे। पता नहीं गायक महोदय को आदमी से ऐसी क्या नफरत थी, कि मुहल्ले वालों की बहू-बेटियों का विवाह मनुष्य से कराने के बदले वे पशुओं से, सो भी ऐसे गये-गुजरे पशुओं से, जिनसे देह छुलाना भी पाप समझा जाता है—कराने लगे!

तन्त्र और मन्त्र के आचार्य, कामख्या-रिटर्न पं० टेंगर मिश्र जी तुरन्त बोले—"अरे, यह है गुल्लरवाले चमरदेव, चमरदेव—। तभी यह ऐसी गन्दी गाली बकता है! न यह मृगी है, न 'अपस्मार', यह विशुद्ध प्रेत-बाधा है। इसकी नासिका-नली में लाल-मिर्च के धुएँ का प्रवेश कराओ! कपड़े की बत्ती चढ़ाओ!"

लौह-पदक प्राप्त और महाप्रभु ईसा के दास डाक्टर झपट लाल, एल० एम० बी०, बोले—"नो, नो, नो, नो, 'नाइदर' मृगी, 'नार' प्रेत! यह 'प्योर' पागलपन है। इसका फस्द खोलो। तुरन्त रिलीफ होगा। इसे पटको, अभी हम इसका 'फस्द' खोल देता है।"

गायनाचार्य अभी तक अपनी [illegible] के गीत ही उच्च स्वर से अलाप रहे थे। किन्तु अब उन्होंने सुना और समझा कि ये साहित्य-संगीत-विहीन बिना पूँछ के बैल, जो अब तक उनपर पानी ही डाल रहे थे, अब उनकी नाक में कपड़े की बत्ती डालेंगे, धुआँ देंगे और पटक कर पेट पर नश्तर लगायेंगे, तो वे बौखलाकर छः फुट का लट्ठ लेकर लोगों पर टूट पड़े! फिर तो भगदड़ मच गयी। और उस

दिन किसी प्रकार गायनाचार्य के सिर से बला टली। मुहल्ले के लोगों ने भी सोचा कि चलो, अब यह अपना रेंकना बन्द कर देंगे!

परन्तु दूसरे ही दिन पुनः प्रातःकाल जब लोगों के कर्ण-छिद्रों में वही सुपरिचित चिंघाड़—'ड्-ड्—ड्रा-ड्रा—! आ-आ—ऽ-ऽ-ऽ-ऽ—! त-त-ता,—ताना री ई-ई-ई—' गोली की तरह घुसा, तो लोग एकदम अधीर हो उठे। आखिर लोग कितने दिन रतजग्गा करते!

मुहल्ले वालों का एक बड़ा जबर्दस्त 'डेपुटेशन' गायनाचार्य के पिता तथा भाइयों से मिला। फलतः गायनाचार्य को उनके ननिहाल भेजवा दिया गया। मुहल्ले के लोगों ने सन्तोष की साँस ली।

गायनाचार्य बड़ी उमङ्ग से ननिहाल पहुँचे। मामीजी के चरण छूकर प्रणाम किया। कुशल-क्षेम कहने सुनने के बदले तुरन्त 'तानपूरा' खोला, उसे चढ़ाया और आँगन में वीरासन लगाकर बैठ गये। तुरन्त अपना 'भूकम्पराग' अलापना उन्होंने आरम्भ कर दिया। उँगलियाँ ऐंठने लगीं। सारी देह जैसे टूट रही हो, इस प्रकार मरोड़ खाने लगी! आँखें फैल गयीं। मुँह टेढ़ा हो गया। और—"ड्-ड्—ड्रा—! आ—ऽऽऽ—! त-त-ताना री—ई-ई-ई—!" का स्वर उनके कण्ठ से ताबड़तोड़ निकलने लगा।

मामी भी बेचारी स्तब्ध और निर्वाक् हो गयीं! भाँजे को यह कौन-सी बीमारी एकाएक हो गयी! न कुशल-मङ्गल पूछा, न कहा! जलपान भी नहीं किया और इस प्रकार आते ही इसका देह, उँगली, हाथ, मुँह सब ऐंठने लगे! मामी जी घबरा कर बोलीं—"बाबू, घर पर तो सब कुशल है न, तुम्हारी तबीयत तो अच्छी है न? यह क्या हो रहा है तुम्हें—! यह चिल्ला-चिल्ला कर क्या कह रहे हो? जल्द बताओ! मैं बहुत घबरा रही हूँ!"

गायनाचार्य अपने सुर-तान के स्वर में ही, 'ग्र्-ग्र्' करते बोले—"य-य-य—यह! आ—आ—भूकम्प—रा-आ—आ—आ-ग-ग-ग—!"

"हाय रे !" मामी जी छाती पीटने लगीं—"घर में भूकम्प भी आ गया, और आग भी लग गयी ! हाय राम ! बाबू, तुम्हारे बाबूजी, माताजी, भाई लोग, बचे या...."

गायनाचार्य अपनी साधना के परम एकान्त तथा उग्र साधक थे। वे साधना में ऐसे तल्लीन हो जाते थे कि कौन क्या कह रहा है, क्या पूछ रहा है यह न सुन पाते थे, न समझ पाते थे। इस समय वह अपने राग का 'सरगम' साध रहे थे—"स–सा–नी–नी–ध–ध, पा–आ–पा, म ग रे—सा—! म—ग—रे सा—! सा—रे—ए—ए—ए—!!"

मामी जी फिर छाती पीटने लगीं—"हाय, हाय—मर गये ! सारे यानी सब कोई मर गये ! हुः हुः हुः हुः ! मकान, धब्ब-धब्ब गिरा, और सब मर गये !"

मामी जी, वहीं बैठकर चिल्ला-चिल्लाकर रोने-पीटने लगीं। और गायनाचार्य का चीत्कार तथा सङ्गीत-चमत्कार और तीव्र होता गया। यह रुदन और 'भूकम्प-राग' का भयङ्कर आलाप जब मुहल्ले में तोप की तरह गूँजा तो आँगन में औरतों की बाढ़ आ गयी। औरतों ने मामी जी को चुप कराया, फिर पूछा—"क्या बात हो गयी जो यों 'छाती-फाड़' रुलाई गा रही हो ?"

मामी जी लम्बी लम्बी साँसें लेती हुईं, आँचल से रगड़-रगड़ कर आँखें पोंछती हुई बोलीं—"क्या बताऊँ बहन, गजब हो गया, गजब—! मेरी ननद के घर 'भूकम्प' आ गया और आग लग गयी। सारा घर जल गया—सब लोग मर गये ! मेरा यही एक भानजा बचा है ! हाय-हाय ! जब से घर आया है, बिना अन्नपानी किये, देखो कैसा मुँह बनाकर, सारी देह मरोड़-मरोड़ कर रो रहा है ! हाय रे, अब क्या करूँ ? कैसे इसे धीरज दूँ ? ऊँ—ऊँ—ऊँ—!" मामी जी फिर रोने लगीं।

गायनाचार्य ने जो यह भीड़ देखी, तो समझे—"वाह, रागिनी खूब जमी! बैजू बावरा तो गाकर सिर्फ पशुओं को बुलाता था, मैंने मनुष्य और वह भी नर नहीं, नारी को, जो बड़े-बड़े योगी-यतियों, साधु-सन्यासियों को मोह चुकी है—अपनी रागिनी की मोहिनी डालकर बुला लिया! धन्य हूँ मैं—"

गायक जी और जोर-जोर से फेंकरने लगे, और माया-ममता की सजीव मूर्तियाँ—ये देवियाँ, सहानुभूति के स्वर में—'च्ः—च्ः—च्ः' करती कहने लगीं—"आह, बेचारा कितना रोता-बिलखता है!"

फिर वे आँचल से गायक जी का मुँह बन्द करती हुई बोलीं—"अब चुप रहो, बाबू! जाने वाले तो गये ही, अब कुल-वंश में जो एक तुम भी बचे-बचाये रह गये हो! यों, रो-रोकर प्राण मत दो, बेटा! चुप हो जाओ!"

गायनाचार्य तान व तानपूरा बन्द करके बोले—"अहा—हाः—! मामी जी, इस सारे संसार में एक आप ही हमारे सङ्गीत और स्वर का दर्द समझने वाली मिलीं। अभी मैंने आपको 'बिलावल' का सरगम व तान सुनायी है!"

मामा जी आँसू पोंछती हुई बोलीं—"बेटा, मैं तुम्हारा दर्द नहीं समझूँगी तो कौन समझेगा! हम तुम्हारे हैं और तुम हमारे! और बेटा, जिस अभागे का सत्यानाश हो जाता है, वह तो तुम्हारी तरह बिलबिलाना ही है! तुम क्या करोगे? हाय, क्या इसे मैं नहीं समझती!"

गायनाचार्य बोले—"हाँ, हाँ, आप जरूर मेरी राग-रागिनी को समझ रही हैं। बिना समझे—न आँख से आँसू आते हैं, और न मुँह से 'हाय राम', 'आहा—!' 'ओह, हो!' ही निकलता है। जरूर आप सङ्गीत की मर्मज्ञा हैं। शास्त्रों ने तो स्त्री को ही सङ्गीत कहा है।

अच्छा, अब आप इससे भी ज्यादा एक दर्दीली चीज सुनिए। आह, क्या कहने! यह है 'पीलू' की 'पुरिया'।"

गायनाचार्य ने फिर तानपूरा सँभाला और षड्ज में आलापना आरम्भ किया—"आ—आ—अ ऽ ऽ ऽ ऽ—आ—!" जिस तरह कोई कुठिले में भर्राये गले से शंकित स्वर में बोले, वैसा ही इस 'पीलू की पुरिया' का आलाप था।

भाञ्जे का फिर हाथ-मुँह ऐंठना देखकर मामी जी पुनः घबरायीं। उन्होंने तुरन्त एक आदमी दूकान पर भेजकर अपने पति को बुलवाया।

पति आये तो मामी जी ने रो-रोकर कहा—"चलो, देखो, भाञ्जा आया है और आँगन में बैठा-बैठा तड़प रहा है! यह देखो भगवान का अत्याचार! उसके घर भूकम्प भी हुआ और आग भी लग गयी!"

"ऐं—!" गृहस्वामी यानी गायनाचार्य के मामा जी तड़प कर बोले—"क्या कहा, उसके घर भूकम्प आया और आग भी लग गयी! तब तो बहुत नुकसान—"

"नुकसान!" मामी जी रोकर बोलीं—"नुकसान ही होता, तो क्या रोना था! घर के सब लोग भूकम्प में जल कर मर गये, जो बचे वे आग में जल गये। यही बेचारा अकेला किसी प्रकार बच पाया है। और भागा-भागा यहाँ आया है।"

मामा जी व्याकुलता से घर में घुसे! देखा—आँगन में आसन लगाकर गायनाचार्य भांजा, जाने क्या बड़बड़ाकर रो रहा था। मामा जी भर्राये स्वर में बोले—"क्यों जी, भूषण, (गायनाचार्य का यही शुभ नाम था) घर में भूकम्प आया और आग लगी, एक साथ दोनों घटनायें हो गयीं?"

गायनाचार्य, तान-आलाप के ही स्वर में बोले—"भू—भू—भू—उ—उ—उ—अम—! रा—आ—आ—ग—ग—ग, दो हो

गया। यह 'पी—पी—पी, लू—लू—लू, की—ई—पु—पु—पु—रि—या—या—या है—!"

मामा जी अपनी पत्नी को देखते हुए बोले—"यह ऐसा रुक-रुककर काहे बोल रहा है? इसकी गोद में यह क्या है? यह—'आ—आ—आ—' क्या कर रहा है? उँ—?"

मामी जी आँख के आँसू पोंछतीं, नाक से नेंटा छिनकती बोलीं—"उसके रुक-रुककर बोलने का कारण पूछते हो, जिस बेचारे की सारी दुनिया ही उजड़ गयी है? और यह 'आ—आ—आ—' करके रोता है—और जब से आया है, यही हाल है इसका!"

मामा जी भाञ्जे से लगातार पूछने लगे—"कैसे-कैसे, क्या-क्या हुआ?—यानी भूकम्प किस दिन, किस समय, किस तारीख को हुआ? भूकम्प हुआ तो तुम्हारे सब घर गिर गये, या कुछ बचे भी? और भूकम्प आया तो सिर्फ तुम्हारे ही घर आया या तुम्हारे गाँव के और लोगों के घर भी आया? फिर आग कैसे लग गयी? और तुम्हारे घर के कौन-कौन आदमी आग से जलकर मरे, और कौन-कौन भूकम्प से दब कर मरे?..."

पर भाञ्जा अपनी स्वर-साधना में इतना तन्मय था कि उसने अपने मामा जी की बात सुनी ही नहीं, या सुनकर उसका उत्तर देना उसने अपना रसभङ्ग करना समझा। वह लगातार 'पीलू की पुरिया' आलापता रहा।

मामी जी ने अपने पतिदेव से कहा—"सुनो, जब इसका दिमाग ही ठिकाने नहीं है तो इससे कुछ पूछना-पाछना हमारी समझ में बिलकुल बेकार की बात है। तुम चले जाओ इसके गाँव, और सारी बात अपनी आँखों से देख लो—गाँव वालों से समझ लो।"

पत्नी के इस प्रस्ताव का मामा जी ने समर्थन किया और तुरन्त चल पड़े भाञ्जे के गाँव। दूर ही से बेचारे, उस गाँव के पड़ोसी गाँव

वालों से पूछते रहे—"क्यों भई, आपकी तरफ भूकम्प कब हुआ ? और 'अगलग्गी' भी हुई थी क्या ?"

मामा जी कुछ इस बेचैनी व व्यग्रता से जल्दी-जल्दी बोल रहे थे कि गाँव वालों ने इन्हें कोई सिरफिरा या पागल समझा। किसी ने यों ही 'हाँ' कहा। कोई हँसा, कोई मुस्कराया। और मामा जी जल्दी-जल्दी डग भरते भाञ्जे के गाँव की ओर भागते गये।

संयोग की बात कि ज्यों ही इन्होंने गाँव की सीमा में पाँव रखा, सबसे पहले इनकी भेंट भाञ्जे के बाप, यानी अपने बहनोई से हुई। गोधूलि का समय था, बहनोई साहब नङ्ग-धड़ङ्ग, कमर में केवल एक गमछा लपेटे बाहर खेत की तरफ दिशा-मैदान को आये थे। इन्हें देखते ही मामा जी के प्राण सूख गये। जीभ तालू में सट गयी और बोलती बन्द हो गई। वह चिल्लाना चाहते थे, मगर मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी। बहुत जोर लगाकर वह अस्फुट स्वरों में इतना ही बोल सके—"भू—भू—भूत—त—त—!"

बहनोई साहब एक विकट ठहाका लगा कर बोले—"हा, हा, हा, हा, वाह जनाब! चार ही पाँच घण्टे की भाञ्जे की सोहबत ने आपको भी आलापना व [illegible] सिखा दिया! गोया आप भी गायनाचार्य हो गये! कमाल है—कमाल! हः हः हः हः!"

फिर ठहाका लगाते हुए अपनी दोनों भुजाएँ फैलाकर बहनोई साहब साले के आलिङ्गनार्थ दौड़े। और साले साहब अपने दोनों होंठ सटाकर उसे चोंच की तरह बनाकर "हूः हूः हूः हूः!" कहते पृथ्वी पर औंधे मुँह आ रहे।

बहनोई साहब और कसकर कहकहा लगाते हुए बोले—"बस, बस, सारी हरकत भाञ्जे की है—सारी सिफत भाञ्जे की है! वह भी इसी तरह होंठ सटा कर, कभी फैलाकर 'हू. हः हः' किया करता है। आप भी एक महान गायक हो गये। [illegible]। दरअसल करने

की जरूरत अब नहीं। अब सारे शरीर को पृथ्वी पर डण्डे की तरह गिराकर दण्डवत या पागलपन करने की रस्म उठ गयी है। इसे बुरा अथवा हीन-भावना का द्योतक समझा जाता है। अब तो प्रणाम की सारी रस्म जरा-सा होंठ हिलाकर 'जय हिन्द!' 'नमस्ते जी!' कहकर ही पूरी कर ली जाती है। खैर उठिए, खुश रहिए!"

मगर बहनोई साहब का यह व्याख्यान सुने कौन? साले महोदय तो बहनोई को भूत समझ कर बेहोश हो रहे थे। बहुत उठाने पर भी जब वह नहीं उठे, तो बहनोई उन्हें देखने लगे। देखा, पूरी बत्तीसी बैठ गयी है। और वह मूर्च्छित हैं। तब बहनोई साहब कुछ आदमी इकट्ठे कर इन्हें टाँग-टूँग कर घर लाये। मामा जी की बहन यानी गायनाचार्य जी की माता जी ने देखा कि भाई बिलकुल बेहोश है, तो रोकर बोलीं—हाय रे, मेरे भाई को क्या हो गया?"

पतिदेव बोले—"वही भूकम्प-राग वाली बीमारी है। जैसे तुम्हारा बेटा मुँह बनाकर आलापता-आलापता बेहोश हो जाता था, वैसे ही यह भी 'भूकम्प-राग' आलापते-आलापते बेहोश हो गये हैं!"

पूरे आधे घण्टे के बाद विविध उपचारों से मामा जी होश में लाये गये और होश में आते ही फिर वही मुँह बनाकर—"भू—उ—उ—उ—त्—त्—अ्—अ्!" का राग आलापने लगे।

बहन-बहनोई दोनों बोले—"आप यह क्या 'भू—उ—उ—!' कह रहे हैं? कोई तान आलापते हैं, या आपको कोई बीमारी हो गयी है?"

मामाजी आँखें फाड़-फाड़ कर इन्हें देखने लगे और डर से काँपते हुए बोले—"मे—मे—मेरा प्राण छोड़ दो! दोहाई है! हम बिलकुल बेकसूर हैं।"

बहन और बहनोई बोले—"हम क्या तुम्हारे प्राण ले रहे हैं, जो छोड़ दें! दिमाग दुरुस्त करो—होश में आओ! हम लोग तुम्हारे बहन-बहनोई हैं, शत्रु नहीं, जो तुम्हारे प्राण लेंगे!"

मामा जी गिड़गिड़ाते हुए बोले—"हाँ, हाँ, तुम हमारे बहन-बहनोई हो, और शत्रु भी नहीं हो, मगर भूत तो हो? भूत तो प्राण लेते ही हैं!"

बहन और बहनोई साश्चर्य मुँह विस्फारित कर बोले—"क्या कहा! हम भूत हैं! बौराये तो नहीं हो! हम भूत कैसे हैं!"

मामा जी काँपते-काँपते बोले—"तुम भूत ऐसे हो, कि तुम भूकंप और 'अगलग्गी' में मर गये, और भूत हो गये। जिसकी अकाल-मृत्यु होती है, वह प्रेत ही होता है। दोहाई है, मुझे छोड़ दो! बाप की सौगन्ध, अब कभी तुम्हारे घर तो क्या, गाँव में भी नहीं आऊँगा! वह तो तुम्हारा बेटा जब से गया है, बराबर रो रहा है—हमारे घर भूकम्प हुआ, आग लगी। तब मैं दौड़ा आया। मैं जानता कि तुम मेरे ही प्राण लोगे, तो कभी नहीं आता!"

बहनोई फिर ठहाका मार कर हँसे। और मामाजी मारे भय के फिर "हूः हूः" करने लगे। जब मुहल्ले के दो-चार आदमी आये और मामा जी को सारी बातें उन्होंने समझायीं, तब मामाजी जैसे डूबकर निकले—सोते से जगे। चौंककर बोले—"अरे, तो—वह 'आ, आ' करके गाना गाता है, रोता नहीं है? राम-राम, मैंने तो उसे मार ही डाला था!"

फिर मामा जी उसी तरह अपने गाँव की ओर भागते हुए चल पड़े। घर आये तो झपट कर भाँजे के हाथ से उन्होंने तानपूरा छीन लिया और उसे तड़ाक् से ज़मीन पर पटक दिया। बोले—"बदमाश, ऐसा गाना क्या कि मामा रोता और घर भूकम्प बन जाए! भाग यहाँ से! खबरदार फिर कभी ऐसा 'आँ—ऊँ—!' किया तो—!"

भावनाचार्य तानपूरा गवाँ कर, रोते बिलबिलाते अपने घर पहुँचे। उसी दिन से उनका 'भूकम्पाग्नि' बन्द हो गया और मुहल्ले वाले सुख की नींद सोने लगे।

नवीन प्रकाशन